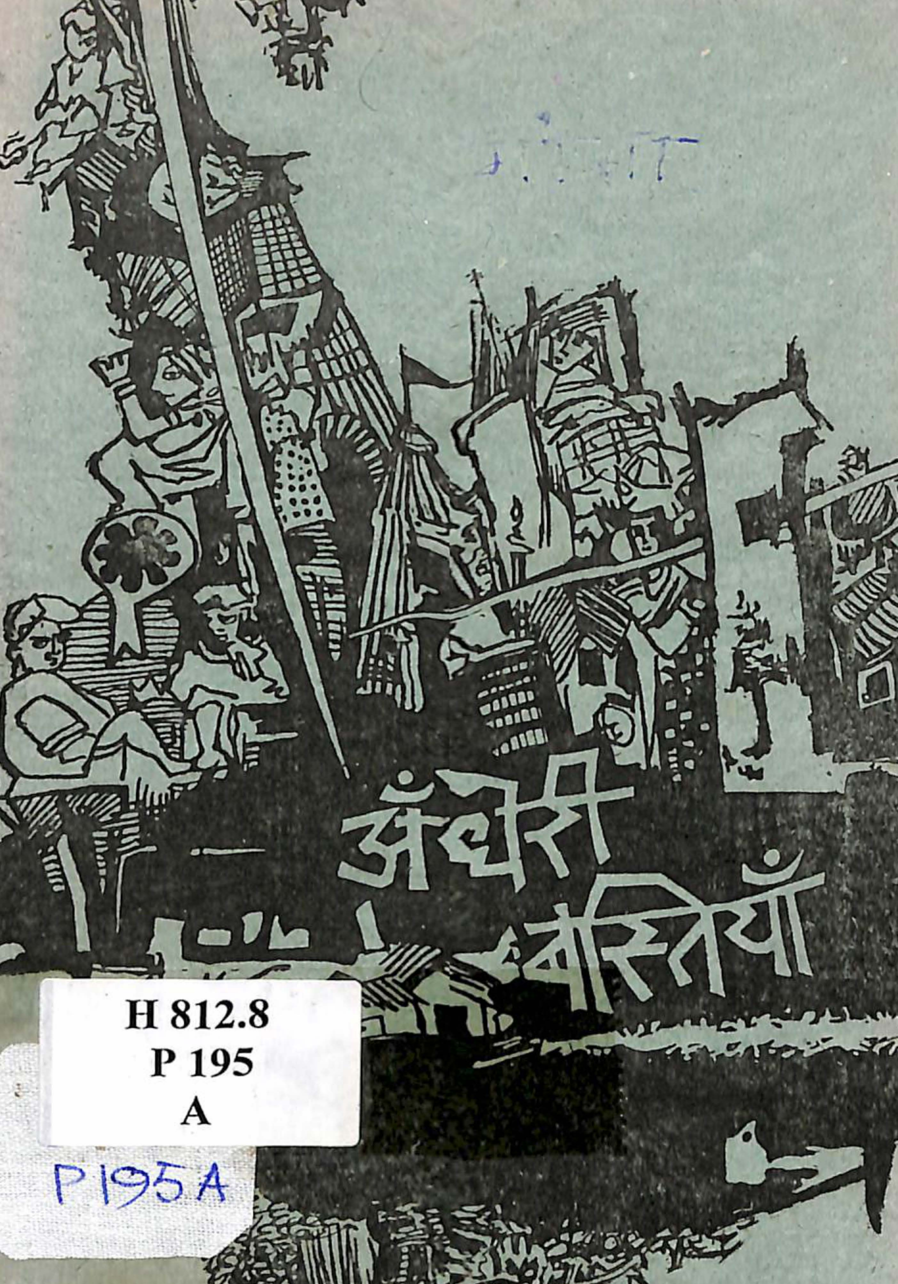

H 812.8
P 195
A

P195A

अँधेरी बस्तियाँ

तन का अँधेरा मन का 'अँधेरा, धर्म का अँधेरा और सामाजिक रूढ़ियों का अँधेरा इन सब अँधेरों केबीच में घिरी बस्तियों के बीच में बसा आदमी छटपटा रहा है। पीढ़ियाँ विद्रोह कर रही हैं। इन अँधेरों को मिटाने का एक बड़ा तूफान उठा है।

श्री गोविन्द वल्लभ पंत की दृष्टि ने इन अँधेरों में झाँका है और देखा है उस रोशनी को भी जो इन अँधेरों को चीर रही है।

I.I.A.S

CATALOGUED

अँधेरी बस्तियाँ

अँधेरी बस्तियाँ

अँधेरी बस्तियाँ

अँधेरी बस्तियाँ

अँधेरी बस्तियाँ

अँधेरी बस्तियाँ

अँधेरी बस्तियां

अँधेरी बस्तियां

अँधेरी बस्तियाँ

अँधेरी बस्तियाँ

ग्रामीण समस्याओं पर आधारित
रंगमंचीय अभिनेय नाटक

विद्या प्रकाशन मन्दिर
दिल्ली-६

अँधेरी बस्तियाँ

लेखक
गोविन्द वल्लभ पंत

Andheri Bastiyan—Gobind Ballabh pant

Library IIAS, Shimla
H 812.8 P 195 A
00039851

39851
21. 6. 72

H
812.8
P195 A

© लेखक १९७०

संस्करण : प्रथम १९७०

मूल्य : रु० ३.००

आवरण : रवीन्द्र सेठ

प्रकाशक : विद्या प्रकाशन मंदिर, दरियागंज, दिल्ली-६

मुद्रक : युगान्तर प्रेस दिल्ली-६

पात्र-परिचय

- भगवान—गाँव का बूढ़ा नंबरदार
- अंजना—उसकी कुमारी कन्या
- प्रकाश—एक समाज-सेवक
- शंकर—गाँव का पुजारी
- गणेश—उसका लड़का
- माया—गणेश की स्त्री
- भरोसे—एक हरिजन
- भगत—एक मज़दूर
- जुगत—दूसरा मज़दूर
- रामदास—भगवान का भावी समधी
- रोशन—एक किसान

  एक भिखारी

दो शब्द

भारत के गाँव आज भी अशिक्षा से उत्पन्न अज्ञान के अंधेरे में घिरे हैं। पुरानी परम्पराओं, रूढ़ि संस्कारों, ऊंच-नीच तथा छुआछूत के भेद-भावों का अंधेरा आज भी ग्राम-वासियों को ग्रस्त किए हैं। मन से, बुद्धि से और परिवेश से घिरे अंधेरे में नई पीढ़ी शिक्षा से प्राप्त ज्ञान की मशाल ले उस अंधेरे से लड़ रही है। सदियों से खड़ी दिवार को तोड़ने का संघर्ष है। विरोध चाहे जितना और जैसा हो, पर रोशनी ने हमेशा अंधेरे को चीर कर राह बनाई है।

श्री गोविन्द वल्लभ पंत की पैनी दृष्टि इस अंधेरों और उसके संघर्ष में भटकी है और उनकी प्रखर कलम ने इस समस्या को इस नाटक में सजीव चित्रित कर दिया है।

रंगमंच पर यह नाटक काफी खेला गया है और काफी लोक-प्रिय तथा सफल रहा है।

प्रकाशक

पहला अंक

[दृश्य—गाँव, धनुषाकार तीन घरों की चहारदीवारी के तीन प्रवेश। उनके सामने एक चबूतरा। पहला मकान भगवान् नामक गाँव के मुखिया का है। दूसरे प्रवेश के भीतर भूमिया का मंदिर। वहाँ एक धर्मशाला और पुजारी के रहने का मकान भी है। तीसरा दरवाजा प्रायः खंडहर हो चुके एक मकान का है। वह भुतहा कहा जाता है। इसीलिए पुजारी शंकर ने अपनी डर मिटाने के लिए उस मकान में भगत और जुगत नाम के दो मजदूरों को जगह दे रखी है। सुबह चार बजे का समय। घोर अंधकार। बादलों में बिजली की चमक से एक-दो बार छाया-मूर्ति-सा हाथ में एक अटेची और थैला लिए दबे पैर आता हुआ प्रकाश दिखाई दे जाता है।]

प्रकाश : [भगवान के मकान के भीतर टॉर्च चमकाकर किसी की राह देखता है। जब कोई नहीं आता तो फिर टॉर्च चमकाकर बहुत धीमे स्वर में पुकारता है।] अंजना! अंजना!

अंजना : [बिना किसी उत्साह और तैयारी के चुपचाप भीतर से

आकर उसके सामने खड़ी हो जाती है ।]

प्रकाश : अंजना, इस तरह पत्थर की मूर्ति-सी आकर खड़ी हो गईं ? वह उत्साह कहाँ गया तुम्हारा ? कपड़े कहाँ हैं ? क्या ऐसे ही नंगे पैर ? चलो फिर, देर नहीं करनी है ।

अंजना : नहीं प्रकाश, मैं तुम्हारे साथ शहर को भाग जाने के लिए तैयार नहीं हूँ ।

प्रकाश : ऐसे वचन तोड़ती हो अब ? कल तुमने मेरे साथ चल निकलने का पक्का वादा किया था ।

अंजना : माफ कर दो मुझे । मैं सारी-सारी रात इसी उलझन पर जागती रही हूँ । मेरी मां वहुत छोटी ही मुझे छोड़कर चल बसी । मेरे बूढ़े पिता ने रुई की वत्ती से दूध पिलाकर मुझे इतना वड़ा वनाया । इस उमर में उन्हें अकेले ही छोड़कर मैं तुम्हारे साथ शहर की रंगीनी में भाग जाऊँ—कौन इसकी सराहना करेगा प्रकाश ?

प्रकाश : पिछले पाँच साल से मैं यहाँ रहता हूँ । मैंने इस गाँव के सुधार की बड़ी कोशिश की— लेकिन यहाँ की गंदगी छुआछूत और अंध-विश्वास के आगे मैं हार गया ।

अंजना : और इस हार को जीत बनाने के लिए ही तुम एक बूढ़े की लाठी छीनकर लिए जा रहे हो ?

प्रकाश : इस अज्ञान और अँधेरे से वाहर निकलने के लिए कल तुम राजी हो गई थीं ।

अंजना : विना विचारे ही उतावली में !

प्रकाश : शहर की सफाई और सभ्यता में रहने के लिए क्या सोच-विचार चाहिए ?

अंजना : हुँह ! अज्ञान और अँधेरा बताते हो तुम यहाँ ? नंगा और भूखा रहकर भी जो गाँव शहर के लिए अनाज का दाना उपजा रहा है, यह उसकी असभ्यता है ?—और तुम सभ्य कहते हो उन्हें ! वे मतलबी, झूठे, भ्रष्टाचार और नकली-पन के नमूने !

प्रकाश : एक ही रात में तुम्हें यह क्या हो गया ?

अंजना : विदेशी कपड़ों और बोली से जिन्होंने अपना प्रभाव और चेहरों को रंगकर तंदुरुस्ती बढ़ाई है। पैसा जिनका भगवान् और सच्चाई सौदे की चीज है। ग्रामोफ़ोन के तवे पर जिनका नकली गीत, सिनेमा की चादर पर जिनकी झूठी तसवीरें नाचती हैं। हवा-पानी, आग-उजाला, खाना-कपड़ा नकली; आचार-व्यवहार, संबंध-प्रेम सब झूठा-ही-झूठा।

प्रकाश : [ठंडी साँस लेकर] मेरा प्रेम भी क्या ? ऐसे बदनाम न करो उसे अंजू ! आग में कूद जाऊँ या पानी में, परीक्षा कर देख लो मेरा प्यार।

अंजना : कैसा प्यार ? नारी के चमड़े का प्यार ? वह प्रकृति का उपजाया हुआ एक धोका है। प्रजा को अन्न-आधार देने वाली गाँव की मिट्टी के प्यार को मैं कहीं श्रेष्ठ समझती हूँ। पहले मेरे गाँव का प्यार है। तुम्हें शहर का ऐसा ही मोह है तो क्यों नहीं तुम मेरे गाँव को वैसा ही साफ़, सुंदर और सभ्य बना देते ? हर शहर पहले एक गाँव ही था और हर गाँव पहले एक मकान !

प्रकाश : [भावना के प्रवाह में आकर उसका हाथ पकड़ लेता है।] अंजना ! अंजना ! ये कैसे शब्द तुम्हारे मुख से निकल गए ! डूबते के लिए धरती, अंधे के लिए उजाला बन आई

हो तुम ! इस गाँव को शहर की तरह साफ, सुंदर और सभ्य बनाने का जीवन-व्रत लेता हूँ ।

अंजना : ठहरो, उसकी बुराइयों से ऊपर !

प्रकाश : हाँ-हाँ, तुम्हारा हाथ पकड़कर यही पवित्र प्रतिज्ञा है मेरी । धरती-आकाश और देवता-मनुष्य गवाह रहें । दूसरा हाथ उठाकर प्रतिज्ञा करता है ।]

भगत : [खंडहर के भीतर से] जुगत रे, ओ जुगत ! भूत जागि गवा रे भूत ! अव मुश्किल वा, खैर नहीं !

अंजना : छोड़ो । [अपना हाथ छुड़ाकर] इस अँधेरे में कोई हमें भूत समझ रहा है । और वह देखो, कहीं आग भड़क उठी ! [अंजना और प्रकाश पर दूर से कुछ उजाला चमकता है ।] इस उजाले में हम पहचान लिए जावेंगे । [घर के भीतर भाग जाती है ।]

[वहाँ पर उजाला वहुत अधिक वढ़ जाता है ।]

प्रकाश : [दूरी पर देखकर] कहाँ लग गई आग ? यह तो गरीब हरिजन की झोपड़ी है—भरोसे चमार ! कौन है उसका वहाँ गाँव से उतनी दूर ! [भाग कर उधर जाता है ।]

भगत : [भगत, जुगत का हाथ पकड़ कर खींच लाता है ।]

भगत : हियन, एइ ठैं । [धरती पर पैर मारकर] देखा रहा भूत ! एक लड़की केर हाथ खींचत रहा । कह नाहीं सकित है लड़की ओकरे जात की या साँची ।

जुगत : धुत्तेरे की ! क्या मजे की नींद से उठा लाया मुझे ।

भगत : तो से वेमतलव झूठ कहित है का ? पेसाब करे खातिर आइन रहा । बाप रे !!

जुगत : अरे बुद्धू, इस भूतहे मकान में इन्हीं भूतों से लड़ना है ।

तभी तो हमें यहाँ मुफ्त रहने की इजाजत मिली है ।

भगत : अब तो सवेरा हुइ गवा ।

जुगत : सवेरा है यह ? कहीं आग लग गई !

भगत : आग नाहीं, इहू भूत-लीला हौ । चल भागि चलें, सो रहें । [उसको हाथ खींचकर भगा ले जाता है खंडहर में ।]

भगवान् : [आँख मलते हुए नींद से जागकर आता है ।] इस उजाले को मैंने सूरज समझा । यह तो आग लग गई । उस गरीब की ही झोपड़ी होगी यह । अपना-पराया कौन है उसका ? [खंडहर के द्वार पर जाकर पुकारता है ।] अरे ओ भगत ! ओ जुगत ! उठो रे आग लग गई गाँव में । [द्वार भड़भड़ाता है ।]

[जुगत और भगत आँखें मलते हुए आते हैं ।]

भगत : [आँखों पर हथेली रख दूरी पर देखकर] हम समझे रहा कि ई भूत-लीला बाय । सच्चे ही आग लागि गई का ?

जुगत : मकान किसी का नहीं है वहाँ । गाँव के बाहर है वह जगह । घास का ढेर होगा, उसी में आग लग गई । शायद? भरोसे की झोपड़ी है ।

जुगत : उसके जोरू न जाँता, न गाय-बैल, न लोटा-कंवल । चिलम पीकर रख दी होगी लापरवाही से । आंधी से उड़ा गई ।

भगवान : बहस मत करो । उसके कुछ नहीं, पर वह खुद तो है न अपना । चलो, अरे वह आदमी तो है न ?

[शंकर के घर से उसका बेटा गणेश लाठी लिए आता है ।]

गणेश : कहाँ लग गई आग ? मैं चलूँगा उसे बुझाने ।

[भगवान्, उसके पीछे जुगत-भगत फावड़े उठा आते हैं । शंकर आकर गणेश का हाथ खींच लेता है ।]

शंकर : तुम नहीं जाओगे उस नीच के घर आग बुझाने।

[उसके हाथ की लाठी छीन लेता है।]

गणेश : पिताजी, आग नीच-ऊँच सबको एक ही तरह की राख में बदल देती है। जो आग आज एक अछूत के घर में लगी है, उसकी लपट ऊँचे दरवाजे को भी छू सकती है।

शंकर : नहीं छू सकती, मैं कहता हूँ तुझसे। मैं इस भूमिया के मंदिर का पुजारी हूँ। नहीं देखता है? नित्य नियम से नहा-धोकर मैं उनकी कैसी पूजा करता हूँ।

गणेश : पिताजी, शरीर धोने से मन का घमंड नहीं धुलता, अगर दीन और दलित के लिए हमारी पूजा में कोई प्रार्थना नहीं है तो वह एक कोरा पाखंड है। नशे-पानी की तरह से सिर्फ एक पुरानी आदत।

शंकर : बदतमीज, क्या बकता है यह?

गणेश : इतिहास में बार-बार हमारी ज़ाति का यह घमंड चूर-चूर हुआ है।

[घूँघट काढ़े माया एक टोकरी में कुछ गोबर लाकर जमीन पर थापने लगती है।]

शंकर : कब हुआ है रे?

गणेश : सोमनाथ के पुजारी का अभिमान टूटा था जब।

शंकर : दो दर्जे क्या पढ़ लिया बड़ा भारी पंडित हो गया रे तू, इसी डर से मैंने तेरा नाम कटवा दिया था और अगर ज्यादे चतुराई तूने दिखाई तो मार-मार कर सारी पुरानी पढ़ाई भी तेरी खोपड़ी से निकाल दूँगा। [लाठी तानकर] चल भीतर।

[डरे हुए लड़के के पीछे शंकर का लाठी ताने भीतर जाना।

माया घूंघट हटा अपना काम छोड़, गोवर सने हाथों से चिंता के साथ उसके पीछे चली जाती है। प्रकाश भरोसे को अपनी पीठ पर लादकर लाता है। उसके पीछे भरोसे की टांगें पकड़ सहारा देते हुए भगवान् भी आता है। दोनों उसे चवूतरे पर रखते हैं।]

भगवान् : [पुकारता है।] अंजना ! वेटी ! लोटे में जल ले आ जल्दी से, पंखा भी। [प्रकाश से] तुम खूव पहुँचे सवसे पहले इस गरीव की मदद को। कैसे जान पड़ा तुम्हें ?

प्रकाश : जिस आग ने जलाया, उसी की लपटों ने राह दिखा दी। [अंजना एक लोटे में जल और पंखा लेकर आती है। भरोसे चवूतरे पर उठ वैठता है। अचरज से इधर-उधर देखता है।]

भगवान् : [भरोसे को सँभालते हुए] ठीक हो भरोसे ? [उसे पंखा करता है।]

भरोसे : हाँ, ठीक हूँ। यहाँ कहाँ ले आए मुझे ?

प्रकाश : कैसे लगी यह आग ?

भरोसे : कुछ नहीं जानता।

भगवान् : लपटों से छू तो नहीं गए ?

भरोसे : नहीं।

प्रकाश : वेहोश क्यों पड़े थे ?

भरोसे : डर से, पंखा रहने दीजिए, मैं ठीक हूँ।

भगवान् : प्यास लगी है ?

भरोसे : हाँ।

भगवान् : इस लोटे में दूध ले आओ अंजना दुहकर।

भरोसे : [पंखा छीनकर अलग रख देता है।]

[ग्रंजना लोटे का पानी गिराती हुई चली जाती है ।]

भरोसे : [उठकर इधर-उधर देखता है ।] मालिक, नंगा-भूखा जैसा भी था, उस झोपड़ी के भीतर लुका-छिपा । ग्रव कैसे मेरी ग्रावरू रहेगी ?

[भगवान् के इशारे पर प्रकाश दीवाल के सहारे खड़ी चार-पाई उठाकर चवूतरे पर रखता है । भगवान् भरोसे को उस पर लिटा देता है ।]

भगवान् : लेटो इस पर, ग्रभी कमजोर हो तुम । सारी फिक्रों को दूर फेंक दो । सव इंतजाम हो जायगा तुम्हारा ।

शंकर : [भीतर से ग्राकर ग्रपने द्वार पर खड़ा होता है ।] यह क्या ? चारपाई पर विठा दिया उसे ?

भगवान् : पुजारी जी, वुनने तक ही है क्या इसमें इसका ग्रधिकार ? वैठ नहीं सकता यह उसमें दुख-पीड़ा में भी ? चारपाई मेरी है यह । मैं चाहे जिसे भी विठाऊँ इस पर ।

शंकर : मैं तो भूलकर न वैठूंगा ग्रव कभी इस पर ।

[ग्रंजना लोटे में दूध लाकर भगवान् को देती है ।]

भगवान् : भरोसे, लो दूध पी लो । पानी ठीक न होगा ।

भरोसे : [मुँह पर हाथ लगाकर ग्रोक से दूध पीना चाहता है ।]

भगवान् : ऐसे कहीं दूध पिया जाता है ? लोटा ही मुँह से लगाग्रो ।

भरोसे : नहीं, नहीं । [इधर-उधर देखते हुए शंकर पर दृष्टि पड़ती है तो सकुचाता है ।] नहीं, ग्रापका वर्त्तन जूठा कैसे कर दूं ?

प्रकाश : जैसे सव करते हैं । पियो वेखटके । मैं माँजकर साफ कर दूँगा । पिछले पाँच साल से मैं इस गाँव में रहता हूँ, मुझे ग्राम-सेवा का एक ही मंत्र दिया गया था--हरिजन का उद्धार । गाँव की सवसे वड़ी समस्या गाँव की गंदगी है । जब

तक अछूतों का उद्धार नहीं होगा, यह नहीं जायगी ।

भगवान् : पियो भरोसे पियो । मैं देने वाला हूँ, तुम पीने वाले, फिर तीसरे किसका भय है ?

[प्रकाश जवर्दस्ती उसके होंठों से दूध का लोटा लगा देता है । शंकर देख-देख कर गुस्से से मुट्ठी वाँधता है और दाँत पीसता है ।]

प्रकाश : घवराओ नहीं भरोसे ! मैं जिस कमरे में रहता हूँ, उसका एक कोना तुम्हारे लिए खाली कर दूँगा । रोटी पकाने के लिए वाहर एक छप्पर डाल लेंगे ।

भगवान् : अजी इसी खंडहर में । जुगत-भगत के वगल में जो गिरी-पड़ी कोठरी है, उसकी मरम्मत हो जाने से वह सवसे वढ़िया रहेगी ।

शंकर : [आगे वढ़कर] कैसे वढ़िया रहेगी ?

भगवान् : यह अपने हाथ का कारीगर है । सँभाल लेगा उसे । आदमी के रहने से मकान की शोभा रहती है । पारसाल महामारी में वहाँ रहने वाला सारा कुटुंव चल वसा । टूटा भयानक लगता है वह, तभी तो लोग वहाँ भूत वताते हैं ।

शंकर : भूत टिक सकते हैं वहाँ, लेकिन यह भरोसे नहीं रहने पावेगा मदिर के इतने नजदीक ।

भगवान् : ऐसा क्या अपराध है इसका ?

शंकर : यह नीच है, अछूत है ।

भगवान् : तुमने उसकी छूत मानकर उसे ऐसा बना रखा है। यह तुम्हारा ही कसूर हैं । यह चोर नहीं है । डाकू और खूनी भी नहीं ।

शंकर : इसका गंदा व्यवसाय है ।

भगवान् : यह चमड़ा कमाता है ? तुम्हारे चरणों को सुरक्षित रखने के लिए ही तो। [उसके पैरों को दिखाकर] अगर यह भरोसे न होता तो आपके चरणों में यह जूता भी न होता। पुजारी जी, आप इसे पहनकर नीच नहीं हुए—यह इसे बनाकर नीच हो गया, ताजुब है ! मक्खी की छुआछूत नहीं मानते आप ?

शंकर : उसकी कैसी छूत ?

प्रकाश : वह मल-मूत्र पर बैठकर आपके भोजन की थाली में पधारती है जब ?

भगवान् : मन की इस संकीर्णता से निकलकर बाहर आइए महाराज ! अगर यह गरीब अछूत न रहा तो भारत के पाँच लाख गाँव बरबाद हो जावेंगे और अगर ये गाँव न रहे तो सारा भारत विनष्ट हो जावेगा। इसे अटल सत्य समझो।

शंकर : मेरे पूजा-पाठ की कोई महिमा नहीं ?

प्रकाश : पूजा-पाठ भगवान को फुसलाने की चीज है और सच्चे परिश्रम से जी चुराने का बहाना है।

भगवान् : इसकी महान् तपस्या को देखो, यह क्या छोटी पूजा है ? चिल्ले जाड़े में, चिलचिलाती धूप में, कीचड़ में, वर्षा में जो कठिन मेहनत यह खेतों पर करता है, उससे प्रजा का पालन होता है। दूसरों का पेट भरने के लिए यह भूखा है। उन्हें उजला रखने के लिए यह गंदा है।

[शंकर जल्दी-जल्दी एक हाथ से दूसरे हाथ को खुजाता है और गुस्से में भरकर मुँह बनाता हुआ चला जाता है। माया फिर कंडे थापने आती है, वह एक ओर खड़ी होकर अंजना से बातें करती है। जुगत और भगत एक टोकरे में

खुरपी, कुदाल, हथौड़ा, फावड़ा, कुल्हाड़ी लिए आते हैं ।]

भगत : [सिर से टोकरा नीचे उतारकर] एइ सामन रहल का ?

जुगत : [उसका मुँह बंद करता हुआ] ठहर जा, मुझे करने दे । यह सब सामान आग में कूदकर बचा लाया हूँ मैं । और क्या-क्या था ?

भरोसे : [अपने हथियार देखकर] सब काम के हथियार ले आए । इससे बढ़कर और क्या था ?

प्रकाश : कपड़े, विस्तर, वर्त्तन-भाँडे ?

भरोसे : जो होगा, जलने दो । जरूरी यही थे ।

भगवान् : इन्हें ले जाकर अपने यहाँ रख दो ।

भगत : [हाथ जोड़कर] मालिक, हूँ-हूँ-हूँ ! [अनिच्छा दिखाता है] मालिक उई डेरा मा !

भगवान : क्या बात है ?

जुगत : सरकार, इसका मतलब है । वहाँ उस मकान में भूत रहते हैं ।

भगवान् : तुम पागल हो । भूत सिर्फ मनुष्य के किए गए पाप का नाम है ।

भगत : मालिक, हम खुद अपन आँखि से देखल हई । एक मेहरारू केर हाथ खींचत रहा एक आदमी और बाप रे !

भगवान् : पागल हो गया क्या ? उस टूटे हुए खंडहर की मरम्मत करेगा यह । छत बाँधेगा, दीवार उठायेगा, जमीन पर का मलवा दूर फेंकेगा । जब खंडहर मकान की शकल में उठ जायेगा, एक साथी और बढ़ जायेगा तो भूत अपने-आप भाग जायेगा ।

भगत : ई जुगत शहर माँ मजूरी ढूँढे कै कहत है ।

भगवान् : जुगत, क्यों उसे बहकाता है ? शहर में क्या रखा है ? कठोर परिश्रम की मीठी रोटी छुड़ाकर क्यों इसे हवस के जाल में फँसा रहा है ?

जुगत : नहीं सरकार, मैंने कुछ नहीं कहा। शहर के लिए खुद ही इसके कंधों में पर और पैरों में पहिए निकल आए हैं।

भगत : नाहीं मालिक, कच्चू नाहीं। झूठ तौ एहि कर बपौती है। कैहत है, शहर माँ बड़ी खरी मजूरी वा।

अंजना : भगत, हम इस गाँव को ही शहर में बदल देने जा रहे हैं।

भगवान् : लेकिन अंजना, गाँव को शहर में बदलने से पहले इस गरीब भरोसे का इंतजाम करना होगा। शहर और गाँव दोनों ही इस पर टिके हुए हैं। अगर इसकी रक्षा न हुई, तो उन दोनों को भी समाप्त हुआ हो समझो। चलो, अभी हम इसे अपने ही यहाँ शरण दें, फिर देखा जायगा।

[दोनों भरोसे को सहारा देकर अपने
घर के भीतर ले जाते हैं।]

जुगत : भैयाजी, एक बात समझ में नहीं आती। मैं पूछता हूँ, गाँव को शहर बना देने की ऐसी जरूरत क्या आ पड़ी है ?

प्रकाश : किसान ही सारे देश की जिंदगी है। दिनभर कठोर मेहनत के बाद आराम की जगह फिक्रों में ही जिसकी सारी उम्र कटती है, उसकी हालत सुधारने को ही ऐसा किया जा रहा है।

जुगत : नां-ना ! गाँव को उसकी अपनी ही जगह पर रहने दो। उन जी तोड़नेवाले किसानों को शहर के आराम तलब न बनाओ। ये शहर के कलम चलाने वाले, जाड़ों में बिजली की सिगड़ी और गरमियों में पंखों के नीचे, गद्दियों पर बैठकर गरीब हल

चलाने वालों के लिए फौलाद के कानून बनाने वाले—ये आराम-तलब नहीं, तो क्या हैं ?

प्रकाश : अब तो पंचायत राज हो जाने से गाँव अपने कानून खुद बनाने लग गया ।

भगत : तो फिर तुम का करिहौ हियन ?

प्रकाश : भाई, सिर्फ कानून से ही सब कुछ नहीं हो जाता । वह तो एक तरह की जबर्दस्ती है । हमने सारी प्रजा को प्रेम से जीत लेना है । जब तक एक-एक व्यक्ति के भीतर सबकी भलाई का विचार न फैल जाय तब तक अकेली सरकार से कुछ न होगा ।

भगत : तुम ई गाँव क' शहर कैसन बनइबे ?

प्रकाश : गाँव का सबसे बड़ा कलंक उसकी गंदगी है । भीतर अँधेरा कूड़ा, रसोईघर की जूठन, राख-कोयला, धुवाँ ! बाहर ये गंदी नालियाँ, मनुष्यों और पशुओं का मैलागोबर ! बीमारी के एजेंट पिस्सू, खटमल, चूहे, मच्छर मक्खियाँ ! जहाँ गंदगी वहाँ दरिद्रता, जहाँ सफाई, वहाँ लच्छमी !

जुगत : कैसे रह सकती है यहाँ सफाई ?

प्रकाश : जिस दिन गाँववाले अपना आलस छोड़कर साफ होने की ठान लेंगे, वे होने लगेंगे ।

भगत : कैसन होइ साकत है ई बात ? हम बनि-ठनि कै साफ-सुथरा पहन बइठल होई । गाय गोबर माँ अपन पूँछ सानि कै छप्प से हमार पीठ माँ मारि के सारा गुड़ गोबर कइ देत हई ।

जुगत : कहीं उजाला है तो कहीं उसकी परछाईं भी तो पड़नी चाहिए न ? हो नहीं सकती गाँव में सफाई । गरीब आदमी साबुन के लिए पैसे कहाँ से लावें ?

३५७८।

प्रकाश : विश्वास से, लगन से, साहस से और नियम से आदमी क्या नहीं कर सकता ? उसने पहाड़ों को काटकर उन पर खेत उगाए हैं, उसने नदियों को बाँधकर सिंचाई की है। क्या-क्या नहीं किया है उसने ?—रेगिस्तानों में हरियाली उगाई है और वर्फानों से फसल वसूल की है। एटम की शक्ति से और भी दुनियाँ न-जाने क्या-से-क्या हो जायगी।

जुगत : विजली के जल्दी ही आने की हमारे गाँव में भी तो खबर है। खंभे गड़ गए हैं।

प्रकाश : आदमी के भीतर जो विचार की धारा है, वह क्या किसी विजली से कम है ? उस विचार को काम में वदल देने ही से क्राँति हो जाती है।

भगत : तव का कीन जाई, हमका हू वतावा। हमार हाथ-पैरन की मेहनत से होई का ?

प्रकाश : साइंस की तमाम ईजादें, पूरी होने के लिए मजदूर की ही मेहनत माँगती हैं। इंजीनियर पुल और बाँध को सिर्फ हवा में देखता है, उसकी ठोस शक्ल विना मजूर की मदद के नहीं वनती। जाओ, टोकरी, झाड़ू और फावड़ा उठा लाओ। ग्राम-सभा ने कुछ कायदे-कानून वनाए हैं। हम भी उसकी मदद करेंगे।

[दोनों भीतर जाते हैं।]

शंकर : [दोनों हाथों में काली-काली दवा लगाए सुनते हुए आता है।] अरे, क्या ग्राम-सभा है ? वहुत से मतलबी लोग उसके भीतर घुस गए हैं और वे अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं।

प्रकाश : पुजारी जी, यह हमारा ही कसूर है। हमने क्यों ऐसा होने दिया ?

शंकर : हमारी सुनता कौन है ? गाँवों की भीतरी हालत अच्छी नहीं

है। तुम यहाँ सुन्दर परदे-कनात लटका कर दरी-कालीन बिछा देते हो। लाउडस्पीकर और गीतों से भीड़ इकट्ठी कर लेते हो। फिर साफ-सुथरी भीड़ की फोटों अखबारों में छप जाती है। इससे क्या गाँवों की हालत सुधर गई ?

प्रकाश : आपकी यह राय सरासर पक्षपात की भरी है। मैं कई सालों से गाँवों में रहता हूँ। मुझसे इसकी कोई बात छिपी नहीं है। जमींदारों के जुलम से क्या आज सभी किसान अपनी गर्दन छुड़ाकर प्रसन्न नहीं हैं ?

शंकर : बेगार की जो भयानक गुलामी थी, वह जरूर मिटी है। ऐसे ही और भी कुछ पापों की कमी हुई है। कुछ रुपए-पैसे का मुँह भी किसानों ने देखा है, इसमें सदेह नहीं। लेकिन सच कहो, उसके साथ ही वे जमींदारों की कोठियों की साजिशें और कठोरता भी क्या पैसे के साथ घर-घर नहीं बँट गई ?

प्रकाश : पुजारी जी, लेकिन एक मन का पत्थर जब चकनाचूर होकर कई टुकड़ों में बिखर जाता है तो फिर उसका कोई बल नहीं रहता। बुराई पर ही क्यों आपकी नजर है, पीप में बैठने वाली मक्खी की तरह। गाँव के लाभ के लिए और भी तो कई योजनाएँ की जा रही हैं।

शंकर : उनके नाम भी तो सुनूँ।

प्रकाश : सफाई, सिंचाई, बीज, खाद, सड़क, स्कूल, अस्पताल आदि-आदि।

शंकर : [मुँह बनाकर] अरे क्या आदि-आदि ? किसानों के लिए अच्छे बीज का सुभीता है, इसमें संदेह नहीं। पर क्या सबको न्यायानुसार मिलता है वह ? टयूबवेल का पानी ? उसकी भी यही हालत है। सब पूजा चाहते हैं। जिसने पूजा कर

दी, उसे मिल गया। सरकार-ऋण देकर गरीव किसानों की सहायता करना चाहती है। वहाँ भी यही वात है। तुम्हें नहीं मालूम है क्या ?

प्रकाश : यह तो ग्रापका ग्रौर हमारा ही कसूर है। इसमें शासन का क्या ग्रपराध ? आप शिकायत कीजिए न।

शंकर : शिकायत करने वाला मार खा जाता है। फिर मेरे पास कोई सवूत भी नहीं।

प्रकाश : तव क्या होगा ?

शंकर : कुछ नहीं प्रकाश, गरीव को ग्रज्ञान के ग्रंधेरे में ही रहने दो। उसकी ग्राखिरी शरण तकदीर है। ग्रपने सारे दुख-दर्द, रोना धोना उसी फूटे भाग के नीचे छिपा लेने दो भाई उन्हें।

प्रकाश : यह ग्रशिक्षा का फल है। इसीलिए तो सरकार ने गाँव-गाँव में स्कूल खोले हैं।

शंकर : स्कूलों से क्या शिक्षा फैली है ? जो किसान के वेटे खेती करते थे, वे सव-के-सव पतलून की जेवों में हाथ डाल वावू वन शहरों की ग्रोर दौड़ते जा रहे हैं।

प्रकाश : उस लहर को लौटाकर हमें गाँव की तरफ कर लेना है। इसीलिए गांव को शहर वना लेना जरूरी हो गया। सवसे पहले यहाँ के घरों व गलियों की सफाई ग्रौर लोगों के मनों का मैल दूर करना है।

शंकर : ग्ररे सव ठीक है, जैसा सनातन काल से होता चला ग्राया है, उसे चलने दो भाई। सफाई तो ग्रमीरों का भोग-विलास है —इसे गाँव के भीतर क्यों लाते हो ? गाँव में इस फैशन को चला दोगे तो वह उजड़ जाएगा।

प्रकाश : पुजारी जी, इसे भोग-विलास कहते हैं ग्राप ? मन की गंदगी

तमाम पापों की जड़ है और तन की तरह-तरह की वीमारियों की। इसे ऐसा ही रहने देने को कहते हैं ? इस जड़ता का जीवित रूप जानते हैं कौन है ? वह गरीब भरोसे है। आप चाहते हैं कि वह आपका गंदे-से-गंदा काम करता रहे और आप उसकी छूत मानते रहें। इस अत्याचार की सदियाँ वीत गई, अव यह आगे नहीं बढ़ेगा।

शंकर : क्यों नहीं वढ़ेगा ? नीच की घृणा तो सनातन धर्म है, सभी ऐसा करते हैं। तुम भी तो यही करते हो।

प्रकाश : मैं उसे साफ और उज्जवल बनाऊँगा। मैं उसकी दीवारों में खिड़कियाँ खोलकर उसे प्रकाश और साफ हवा का अधिकारी वनाऊँगा। मैं उसकी छत में अंगीठी खोलकर काले धुँवे को बाहर निकाल दूंगा। मैं उसे गले लगाऊँगा। उसका हृदय सेवा और त्याग से पवित्र है।

शंकर : वह हो नहीं सकता। उसके कर्म ही नहीं हैं।

प्रकाश : नीच कर्म छल-कपट, चोरी-हिंसा है। आपकी सफाई के लिए मैला हाथ उसका गौरव है, लेकिन आपके हाथों में यह काला काला क्या हो गया ?

शंकर : दवा लगाई है ?

प्रकाश ; क्यों ?

शंकर : वहुत खुजाता है, कुछ दाने भी हो गए हैं। जान पड़ता है किसी तरह का दाद होगा।

प्रकाश : यह नहीं है कर्मों का फल ?

शंकर : होगा।

प्रकाश : इसकी दवा है ?

शंकर : लगाने की दवा से ठीक न होगा तो फिर खाने की शुरू

करूँगा । ठीक होगा कैसे नहीं ?

प्रकाश : लेकिन मेरे गाँव के अछूत की वीमारी, उसके जनम में पैदा हुई है । वह न लगाने की दवा से ठीक होगी न खाने की से ही । क्यों पुजारी जी ?

शंकर : तुम भी तो होमियोपैथी की दवा वाँटते हो, मेरे लिए भी तो सोचना ।

प्रकाश : क्यों नहीं ? लेकिन मुझे तो वीमारी आपके मन की जान पड़ती है । यह गंदी वीमारी जो इनकी खाल छेदकर वाहर निकल रही है—उसके होने पर भी ये पवित्र हैं और चमड़ा कमाने वाले वे हाथ जो पानी से साफ हो जाते हैं—वे भयानक अपवित्र !

[टोकरी-झाड़ू, कुदाल्-फावड़ा लेकर जुगत और भगत आते हैं ।]

जुगत : क्या हुक्म है अब ?

प्रकाश : भाई, नाप लो चाहे तोल लो। स्वारथ से परमारथ हमेशा ही वड़ा है । ग्राम-सभा के साथ-साथ हमें भी कुछ करना है ।

भगत : मजूरी केतना देवे ?

प्रकाश : अरे तू कैसा भगत है ? गले में माला पहनने से क्या कोई भगत हो जाता है ? पंचों में परमेश्वर का अंश है । पंचों का काम परमारथ का काम है, उसकी मजूरी भगवान के यहाँ मिलेगी । सव दानों में श्रेष्ठ दान श्रम-दान है । पैसा खर्च हो जाता है । अन्न हजम हो जाता है । कपड़ा फट जाता है । लेकिन वोया हुआ पेड़, खोदा हुआ कुंआ और पीटी हुई सड़क वर्षों चलती है । [उसके हाथ से झाड़ू लेकर कूड़ा साफ करने लगता है ।]

भगत : रहे द' प्रकाश भइया, ई तोहार करे क' काम होई का ? झाड़ू हमें द' ।

प्रकाश : जाति कूड़ा करने से जा सकती है । श्रमदान से आदमी ऊँचा उठता है ।

शंकर : कैसा दान है यह ? श्रमदान में जो नाश्ता, चाय, सिगरेट-पान उड़ते हैं, वे मजूरी के ही बरावर हो जाते हैं । मजूरी गरीब को मिलती नहीं और नाश्ते का बढ़िया माल उड़ा जाते हैं श्रमदान के संचालक लोग !

प्रकाश : पुजारी जी, आप किसी एक की कमजोरी सभी के सिर क्यों मढ़ देते हैं ? रूस, चीन, यूगोस्लाविया, ईरान आदि पिछड़े देशों ने अपनी योजनाओं में श्रमदान से फायदा उठाया है ।

शंकर : कुछ भी क्यों न हो । श्रमदान का काम फोकट का होने से कोई उसमें दिलचस्पी नहीं लेता । वह दिखाऊ काम ठोस और टिकाऊ नहीं हो पाता ।

प्रकाश : पुजारी जी, गांव की उन्नति के कामों में आप हमेशा पक्ष-पात से काम लेते हैं । क्या ये हमारे भीतर के पाप नहीं हैं, जो हर भलाई में बुराई ही ढूंढ़ा करते हैं ।

शंकर : देखूं फिर तुम्हारे झाड़ू देने से कैसे गाँव की सफाई होती है ?

प्रकाश : जब तक बच्चे से लेकर बूढ़े तक के भीतर सफाई की आदत न जम जाय मैं एक-एक का जूठा-मीठा उठाकर अपने गाँव को आइने की तरह चमका दूंगा ।

शंकर : फिजूल समय बरबाद कर रहे हो, यहाँ शहर आ नहीं सकता, तुम्हीं शहर को क्यों नहीं लौट जाते ? कुवां प्यासे के पास नहीं आता ।

प्रकाश : खोदकर तो आ जायगा ? मैं कब परिश्रम से डरता हूँ ?

शंकर : ओ ! पीड़ा !! पीड़ा !! [मुँह वनाकर दोनों हाथों को खुजाता हुआ चला जाता है ।]

प्रकाश : शहर यहीं आयेगा कैसे नहीं ? जुगत-भगत क्यों ऐसे वुत वने रह गए ? अरे शक हमारी वुद्धि का सवसे वड़ा दिवाला है । जागो ! विश्वास ही जीवन है ! दीवालों पर ये कंडे थाप दिए गए हैं । यह खाद की वरवादी है और कैसी वुरी दिखाई दे रही है । छील दो ये सब ।

भगत : ना-ना भाई, ई ना हो सकित है ।

प्रकाश : हो क्यों नहीं सकता ?

जुगत : पुजारी जी के हैं ये कंडे । उनकी वहू ने थाप रखे हैं यहाँ ।

प्रकाश : गाँव-सभा ने यह कानून पास किया है कि गोवर कंडों में न थापा जाय । उसे गड्ढों में दवाकर खाद वनाई जायगी ।

जुगत : ये तो कानून वनने से पहले पैदा हो चुके हैं ।

प्रकाश : सूख गये हैं निकाल दो । आगे से इनका वंश न वढ़ेगा ! चलो !

भगत : नाहीं भइया जी, हमसे ई नाही हो सकित है । हम मजूर आदमी, चाहे जौन हमका दुई पैसा माँ खरीद सकित है ।

प्रकाश : अरे मूर्ख ! गंदा गाँव ही घर-घर की दरिद्रता है ।
[उसके हाथ से फावड़ा लेकर कंडे निकालने लगता है ।]
लो तुम दोनों झाड़ू से सफाई करो यहाँ ।
[वे दोनों सफाई करने लगते हैं । माया घूँघट काढ़े आती है । इधर-उधर चल-फिर कर मुट्ठियाँ वाँधती है और अपना असमंजस प्रकट करती है ।]

भगत : [इशारे से अपनी लाचारी दिखाता है ।]

प्रकाश : [माया के प्रवेश से अनजान होकर उसके थापे हुए कंडों

को हटाते हुए] कंडों का जलाना अपने पैरों पर कुल्हाड़ी है।

माया : [घबराई हुई जुगत के पास जाकर इशारे से प्रकाश को मना करने की प्रार्थना करती है।]

जुगत : [कान पकड़ हट जाता है और उससे खुद ही कहने का इशारा करता है।]

माया : [उसी तरह भगत के पास जाकर इशारा करती है।]

भगत : ऊँऽऽ हूँऽऽ ! मैं नाहीं या दल-दल में फँसत हूँ। अपन खुद जाओ न। ई गाँव अब शहर हुआ जात हई और तुम बनित हो परदे माँ की रानी !

प्रकाश : [प्रकाश का ध्यान उधर खिचता है।] क्या बात है ?

माया : [माया घूँघट काढ़े प्रकाश के निकट आकर पीठ फिरा खड़ी हो जाती है फिर भूमि पर अँगूठे से खुरचती हुई खाँसती है।] क्वू ऽ ! क्वू !

प्रकाश : [हाथ रोककर] क्या है ?

भगत : ई कंडन केरि मालिकन हव्वल।

प्रकाश : कहती क्या हैं ?

भगत : डिरात हैं।

प्रकाश : देखो बहन, गाँव की भलाई मन में रखकर फिर किसी से डरने की क्या जरूरत ? यह घूँघट ही तुम्हारा भय है। मनुष्य की बर्वरता और नारी की गुलामी के इस अवशेष को दूर फेंक दो।

माया : [सामने मुँह करती है, पर घूँघट की ओट से कहती है।] ये कंडे हमारे हैं।

प्रकाश : घूँघट दूर करने पर ही जवाब दिया जायगा।

माया : घूँघट ऊपर कर मुँह फिरा लेती है फिर कहती है] ये कंडे

हमारे हैं ।

प्रकाश : लेकिन अब किसी के भी नहीं होंगे । देखो वहन, हम गाँव को साफ और निर्मल वनाने जा रहे हैं । हमें तुम्हारी मदद भी चाहिए । तुम गृहलक्ष्मी हो, दीपक की तरह तुम्हारे प्रकाश से सारा घर उज्ज्वल रहता है । दिया ऐसे ढँका जाता है क्या ? मुँह सामने करो ।

माया : [मुँह सामने करती है] ये कंडे हमारे हैं ।

प्रकाश : और एक ग्राम-लक्ष्मी है—उसने भी मुँह से घूँघट डाल रखा है । वह अपना घूँघट हटाकर हमारे गाँव पर सुदृष्टि करे तो हमारा सारा दुख-दारिद्रय, रोक-शोक, ईर्ष्या-घृणा, छल-कपट दूर हो जाय ।

माया : क्यों नहीं करती वह हमारे गाँव पर सुदृष्टि ?

प्रकाश : हमने उसे इतना गंदा वना रखा है । मंदिर की दीवाल कंडे थाप कर ऐसी भद्दी वना दी गई है । मनुष्य के मन में इसे देखकर अरुचि पैदा हो जाती है । देवी कैसे आवेगी यहाँ ?

माया : फिर कंडे कहाँ थापूँ मैं ? वता दीजिए दूसरी जगह ।

प्रकाश : कंडे थापे ही नहीं जावेंगे । गड्ढा खोदकर गोवर पेशाव नियमपूर्वक ढँक दी जायगी । उससे खेतों को सोने के मोल की खाद मिलेगी । अपने आप गाँव की सफाई हो जायगी । मक्खियाँ-मच्छर नहीं रहेंगे—वे भयंकर वीमारियों को फैलाने वाले हमारे शत्रु !

माया : यह तो आप सव ठीक ही कह रहे हैं । लेकिन कंडों के विना खाना कैसे पकाऊँगी ?

प्रकाश : पहला सवाल अनाज की उपज का है । खाद की कमी से ठीक-ठीक सिंचाई और जुताई होने पर भी हमारे देश में

गेहूँ की औसत पैदावार ७½ मन फी एकड़ है, जब कि यूरोप के कई देशों में उतनी ही जमीन में पैंतीस मन है।

गणेश : [एक टोकरी लेकर आता है।] ठीक तो कह रहे हैं। ले जा ये कंडे समेट कर। अब मत थापना आगे से।

माया : [उसे देखकर फिर घूंघट काढ़ टोकरी में कंडे बटोरने लगती है।]

गणेश : [उसका घूंघट उलटकर] अरी तुझसे एक लाख वार कह दिया अब भारत आजाद हो गया, फिर यह जानबूझ कर अँधेरा क्यों करती है? अभी तो मुँह खोलकर बातें कर रही थी। मुझे देखा तो घूंघट!

माया : [मुँह बनाकर] हटो भी! [टोकरी में कंडे उठाकर भीतर चली जाती है।]

गणेश : प्रकाश भाई, मुझे भी तो कोई काम बताओ।

प्रकाश : जहाँ पर जो उचित समझो, करो। मतलब एक ही है, गाँव को साफ-सुथरा बनाना। एकमात्र यही बीमारी है इसकी—गंदगी, यह चली गई तो सब कुछ ठीक हो जायगा।

गणेश : झाड़ू मुझे दो।

प्रकाश : सुनो, झाड़ू देने से अच्छा है कूड़ा न करना, इलाज कराने से वेहतर है बीमारी न होने देना, खोज करने से अच्छा है पहरा करना और उपदेश देने से वढ़िया बात है काम करना। काम करो भाई, कर्म हमारा भाग्य ही नहीं, भगवान् भी है।

[नेपथ्य में बड़ी जोर से ट्रेक्टर के चलने की आवाज होती है। सब अपना काम रोक देते हैं। भीतर से भगवान अंजना

और भरोसे भी दौड़कर आते हैं। माया भी आती है, घूँघट काढ़कर। सव बड़ी उत्सुकता से उधर देखते हैं।]

भगत : [नाचता हुआ] ई रेल चली आत हई का ? जुगत भइया, हम हू का देखे द'।

जुगत : अरे वुद्धू, रेल नहीं, यह ट्रेक्टर है। आधे दाम गांव-वालों ने जमा किए हैं आधे सरकार ने दिये हैं।

भगत : ओके पाछे काँटे अस कोन चीज वाय ?

जुगत : वह तो हल की फालियाँ हैं। दस हलवाहों के वरावर जमीन यह अकेले ही जोत देता है।

भगत : [उछल कर] अरे वाह साइंस की जै !

भगवान : अरे मूरख, क्यों ऐसी खुशी है तुम्हारे ? यह फौलादे का राक्षस है ! सारे गांव को खा जायगा-वच्चे-वूढ़े, औरत-मर्दों को ही नहीं, ढोर-जानवरों को भी।

रोशन : [चिल्लाता हुआ आता है। भगवान् के आगे घुटने टेक दोनों हाथों से सिर पीटता है।] बैल ! बैल ! हाय रे मेरे बैल ! नंवरदार जी, अव क्या करूँ मैं।

भगवान् : हाँ रोशन ! कहता तो हूँ, तेरे वैल भी नहीं वचेंगे और तू-तू-तू, तू भी नहीं !

रोशन : [रोते हुए] मेरे दोनों वैल चुरा ले गया कोई।

जुगत : तू कहाँ था ?

रोशन : पंचायत ने गाँव की सफाई और वीमारियों की रोक-थाम के लिए कायदा वनाया है कि आदमियों के साथ एक ही घर में जानवर नहीं रखे जावेंगे। मैंने उन्हें वाँधने के लिए अलग झोपड़ी वनाई। अकेला पाकर रात-ही-रात में उन्हें

कोई उड़ा ले गया। मैं तबाह हो गया! क्या करूँ?

भगवान् : रोओ, चिल्लाओ—इसका विरोध करो। धरती को पीटो, आकाश सिर पर उठा लो, नहीं तो यह हम में से किसी को बाकी न रखेगा।

शंकर : [अपने दोनों हाथों में पट्टी बाँधते हुए भीतर से आता है और बड़ी उत्सुकता से पूछता है।] क्या हो गया? क्या हो गया?

भगवान् : अभी कुछ नहीं हुआ है। लेकिन मामला बड़ा गंभीर है। यह उसी की गरज है! हल चलाने की मशीन आ गई है। वह एक आदमी को काम देकर दस को भूखा मार देगी। ऐसे ही गाँव में बेकारी है। वे कहाँ जावेंगे?

प्रकाश : नंबरदार जी, मशीन भी युग की उपज है। क्यों आप दुश्मन समझकर उससे भय खाते हैं? गाँव में बिजली आ जाने दीजिए। कई तरह के कुटीर-उद्योग खोलकर सब बेकारों को काम दे दिया जायगा।

भगवान् : बिजली तो और भी भयानक है।

प्रकाश : उसका नियम समझकर उपयोग कर लेने पर वह मनुष्य की दासी है। उसने मानव के कठोर परिश्रम को अपने माथे पर लेकर उसकी थकान मिटाई है और उसके पसीने की बूँदों में मोती पिरोए हैं। भय सिर्फ अपने ही मन की बीमारी है। छोड़िए उसे।

भगवान् : नहीं रे नहीं! शंकर! भीतरी मामलों में हम लड़-झगड़ सकते हैं—यह ट्रेक्टर, यह मशीन, सारे गाँव की दुश्मन है, इससे मोरचा लेने के लिए आओ हम सब एक हो जायँ!

[शंकर का हाथ पकड़ने को बढ़ता है।]

शंकर : [पीछे को हटते हुए] हैं ! हैं ! हैं ! बड़ा दर्द है।

भगवान् : तुम्हारे हाथ में क्या हो गया यह !

(यवनिका)

दूसरा अंक

[वही दृश्य। उस जगह पर बहुत-कुछ सफाई कर दी गई है। चबूतरे और भूमि पर कूड़े का नाम नहीं है। सब चीज़ें यथा स्थान रख दी गई हैं। एक ओर एक कूड़ादान भी स्थापित कर दिया गया है। बीचों-बीच में रोशनी के लिए एक खंभा भी गाड़ा गया है। उस पर लालटेन लगी है। दीवालों पर जो कंडे थे, वे सब निकालकर साफ कर दिए गए हैं। गणेश के साथ उसकी पत्नी माया सिर पर डलिया रखे खेतों से आती है।]

माया : [घर के भीतर अनिच्छा से जाती हुई रुककर लौट आती है। चबूतरे पर अपनी डलिया फेंक देती है।] नहीं जाती, यह घर है क्या ? घोर नरक !

गणेश : हश्श ! इतनी जोर से क्या कहने लगी ? अपने घर के भीतर की बात ! कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा ?

माया : गाँव-भर में सब पर खुल गई है अब तो। जो भी कहते हैं, सभी मुझे या तुम्हें ही दोष देते हैं।

गणेश : क्या कहते हैं ?

[शंकर का हाथ पकड़ने को बढ़ता है।]

शंकर : [पीछे को हटते हुए] हैं! हैं! हैं! बड़ा दर्द है।

भगवान् : तुम्हारे हाथ में क्या हो गया यह!

(यवनिका)

दूसरा अंक

[वही दृश्य। उस जगह पर बहुत-कुछ सफाई कर दी गई है। चबूतरे और भूमि पर कूड़े का नाम नहीं है। सब चीजें यथा स्थान रख दी गई हैं। एक ओर एक कूड़ादान भी स्थापित कर दिया गया है। बीचों-बीच में रोशनी के लिए एक खंभा भी गाड़ा गया है। उस पर लालटेन लगी है। दीवालों पर जो कंडे थे, वे सब निकालकर साफ कर दिए गए हैं। गणेश के साथ उसकी पत्नी माया सिर पर डलिया रखे खेतों से आती है।]

माया : [घर के भीतर अनिच्छा से जाती हुई रुककर लौट आती है। चबूतरे पर अपनी डलिया फेंक देती है।] नहीं जाती, यह घर है क्या ? घोर नरक !

गणेश : हश्श ! इतनी जोर से क्या कहने लगी ? अपने घर के भीतर की बात ! कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा ?

माया : गाँव-भर में सब पर खुल गई है अब तो। जो भी कहते हैं, सभी मुझे या तुम्हें ही दोष देते हैं।

गणेश : क्या कहते हैं ?

माया : यही कि पिता से प्रेम और आदर किया जाता है। क्या उनकी इतनी गंदी बीमारी भी गले से लगाई जाती है ?

गरणेश : अगर मेरे या तुम्हारे ऐसी बीमारी हो जाय तो क्या होगा ?

माया : करम के इस लेख को कौन टाल सकता है ? तुम्हारी तुम जानो, अगर मेरे हो जाय तो मैं अकेली अपने घाव खुद धोकर उनमें दवा लगाऊँ।

गरणेश : ऐसा मत कहो माया, मैं करता तुम्हारी सेवा।

माया : सिर्फ कहने की बात ! अगर ऐसी ही सेवा की भावना तुम्हारे भीतर है तो तुम क्यों नहीं अपने पिताजी के हाथों का रोज पीब धोकर उनमें दवा लगाते ? तीन महीने से उनको धोते और दवा लगाते मेरी तबीयत घिना गई है। और दवाओं से उन्हें कोई फायदा नहीं हो रहा है।

गरणेश : थोड़े दिन और सेवा कर दो माया ! सरकार ने ऐसे बीमारों के लिए खास अस्पताल खोले हैं। मैं जल्दी ही उन्हें वहाँ भरती करा दूँगा।

माया : लेकिन वे अस्पताल में भरती होना नहीं चाहते, कहते हैं, ऐसी गंदी बीमारी के अस्पताल में नाम लिखाकर क्या उन्हें अपने खानदान की बदनामी करानी है ?

गरणेश : बीमारी जब हो गई तो इलाज के लिए कहीं भी जाना पड़ेगा।

माया : हाँ, बीमारी जब उनके खानदान से नहीं डरी तो उन्हें अस्पताल से क्यों घिन हो ?

गरणेश : भीतर चलो न, तुम्हारे यहाँ पर इस तरह खड़ी रहने से लोग न जाने क्या-क्या सोचने लगेंगे ? [उसका हाथ पकड़कर खींचने लगता है।]

माया : नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। और भी एक बात समझ लो, मैं आज से उन्हें अपने हाथों से खाना भी नहीं खिलाऊँगी। परसों मेरी उँगली पर उन्होंने दोनों जबड़े मिला दिए थे। [उँगली दिखाती है।]

गणेश : चलो भी तो। अच्छा आज से खाना मैं खिला दिया करूँगा।

माया : कहते हो रोज। होता कभी नहीं। अगर मेरे भी वही बीमारी हो गई तो क्या होगा ? खिलाना क्या ? तब चूल्हा भी तुम्हारे मत्थे पड़ेगा। नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। मुझे मेरे मैके पहुँचा दो। मैं दो साल से वहाँ गई भी नहीं हूँ।

गणेश : भीतर तो चलो कह रहा हूँ सब हो जायेगा।

माया : [विवश होकर डलिया उठा उसके साथ भीतर जाती है।] लेकिन मैंने जो कह दिया, वह पत्थर की लकीर है।

गणेश : और मेरे वचन भी फौलाद के अक्षर हैं।

[दोनों अपने मकान के भीतर जाते हैं। अपने घर से चिलम सुलगाते हुए जुगत और भगत आते हैं।]

भगत : [चिलम सुलगाते हुए] फू ! फू ! का कौन जाइ भइया, मजूरी केर कहूँ पत्ता-निशान नाहीं। फू ! फू !

जुगत : [एक कोने में खड़ी चारपाई खींचता है।]

भगत : फू ! फू ! हैं ! हैं ! ई का करत है ? प्रकाश भइया कहत हैं कि जौन चीज जे जग्गा या हौ, उहीं रहा दीन चाही। नीक साफ जग्गा चाही।

[दोनों चबूतरे में बैठकर तमाखू पीने लगते हैं।]

जुगत : अरे ये सफाई-वफाई कुछ नहीं है, हमें बुद्धू बनाकर हमारी वोट हथियाई जा रही है।

भगत : वोट का कोई भैंस बाटे जो हमका दूध दी है। ओ खाए क' रोटी नाहीं, बिछाए का कम्मर नाहीं। दिए क' चीज देहल जाई, जेकरे भाग माँ हो ओकरे।

जुगत : नहीं, समझ-बूझकर सही आदमी को दी जानी चाहिए कि खुदगरज वहाँ पहुँचकर अपना उल्लू सीधा करे।

भगत : मजूरी क' का होई ?

जुगत : काम करने वाला कभी भूखा रह नहीं सकता।

भगत : काम केहर वा ?

जुगत : शहर चलने को तो कहता हूँ।

भगत : भइया, बाप-दादा केर लकीर माँ चलीं। ओ कहत हैं कि घर की आधी भली।

जुगत : अरे यहाँ पूरी हो जायगी। जानता नहीं तू ? पुजारी जी के बड़ी खतरनाक बीमारी हो गई है।

भगत : कौन बीमारी ? वो ही जैसे हाथ माँ पट्टी बँधल होई ?

गणेश : [भीतर से आता है।] भगत, एक काम करोगे क्या ? रोज ही की मजूरी है।

भगत : हाँ-हाँ, काहे नहीं, कर वै ई करब, मजूरी न खोजतै हई।

जुगत : [इशारे से उसे हटका देता है।]

गणेश : नकद पैसा कहोगे नकद दे दिया जायगा। नहीं तो कच्चा-पक्का अनाज जिसमें भी तुम राजी होओ।

भगत : का काम करे क' हौ ?

गणेश : मेरे पिताजी के दोनों हाथों में खुजली हो गई है न। उन्हें रोज धोकर दवा लगाने का काम है।

जुगत : कौन कहता है खुजली हो गई ? हमने तो कुछ और सुना है—

गणेश : दुश्मन कई तरह की बातें उड़ा देते हैं।

जुगत : तुम्हारी वहू तो उसके दवा लगाती ही हैं रोज।

गणेश : वे मैके जावेंगी। उनके पिता जी की तबीयत खराब है।

भगत : नाहीं भइया, हम मजूर आदमी हम से ई सब डाकदरी नाहीं हो सकत है।

गणेश : देखो, हमने तुम्हें बिना किराए के यहाँ रहने को जगह दे रखी है।

जुगत : वे भूत भी क्या तुम्हें किराया देते हैं।

गणेश : कौन भूत ?

जुगत : मैं अपने आँख से देखा रहा, दुइ जनों को। अरे बाप रे !

भगत : देखो भाई, हमारी कोई ठीक नहीं है, हम कब मजूरी की तलाश में शहर को निकल जाएँ। भरोसे भी यहीं उस टूटे कमरे की मरम्मत कर रहने लगा है। उससे कहो, वह राजी हो जायगा। भला आदमी है। कुछ लेगा भी नहीं।

गणेश : मंदिर की बात है। वह नीच कौम वहाँ कैसे घुस सकता है।

जुगत : तो अपने पिताजी को ही उसके पास भेज दिया करो। नजदीक ही तो है।

गणेश : यह भी कैसे हो सकता है ? उस अछूत को कैसे छूने लगे वे ?

जुगत : इतनी गंदी बीमारी की छूत नहीं मानी उन्होंने, वह तो घुस आई मंदिर में तुम्हारे पिताजी के हाथों पर !

[प्रकाश को आता देखकर गणेश भीतर चला जाता है।]

प्रकाश : जब देखो तभी चिलम चूसते या बातचीत करते रहते हो।

जुगत : करें भी तो क्या ? काम तो कुछ है ही नहीं।

प्रकाश : है कैसे नहीं ? उतनी वड़ी सड़क वन रही है ।

भगत : ओ तो सरमदान हौ ।

प्रकाश : गाँव की सड़क बन रही है, क्या वह तुम्हारा अपना ही काम नहीं है ? आदमी को कुछ-न-कुछ करते ही रहना चाहिए । खाली वैठे हुओं के दिमाग में शैतान घुस जाता है ।

भगत : सैतान ! हाँ भइया, सैतान घुसव वाय एइ कोठरी माँ, जे माँ हम रहित है ।

प्रकाश : अव क्या डर है वहाँ, भरोसे आ गया ।

भरोसे : [वाहर से आता है ।] हाँ आ गया । चलो, सड़क पीटने के लिए कई आदमियों की जरूरत है । [जुगत और भगत का हाथ खींचकर ले जाता है ।]

[अपने घर से दोनों हाथों में एक छोटा-सा ट्रंक और एक गठरी लेकर गणेश आता है । पीछे-पीछे घूंघट काढ़े उसकी वहू आती है ।]

प्रकाश : क्यों गणेश, कुशल तो है ?

गणेश : इन्हें इनके मैके पहुँचाने जा रहा हूँ ।

प्रकाश : अचानक ही ? तुमने पहले वताया भी नहीं ?

गणेश : क्या वताऊँ ? पिता जी की तवीयत खराव है । कई इलाज कराने पर भी वीमारी घटती नहीं है । इसीसे उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो उठा है । इनके मुँह से न जाने आज क्या निकल गया, वे गुस्से से बौखला उठे और कहने लगे, अभी फौरन ही इसे इसके वाप के घर पहुँचा दो, तव तक मैं न एक दाना अनाज का, न कोई वूंद पानी की अपनी जवान पर रखूंगा ।

प्रकाश : तुमको अपने बीमार और वूढ़े पिता को किसी तरह मना

लेना था ।

गणेश : लाचारी।

प्रकाश : अब कब वापस आओगे ?

गणेश : देर होगी तो नहीं। मान लो, अगर मेरे आने में देर हो गई तो पिता जी का ध्यान रखना । वे इस समय क्रोध में हैं, इसी से कहते हैं उन्हें किसी की जरूरत नहीं । लेकिन मैं जानता हूँ वे असहाय हैं ।

प्रकाश : तुम अकेले बेटे होकर उन्हें इस तरह छोड़े जा रहे हो ? मैं दूसरे का बेटा, कैसे तुम्हें मेरा विश्वास उपज गया ?

गणेश : प्रकाश भाई, तुम्हारे भीतर जो देवता है, वह अगर मेरे भी होता तो मैं ऐसे न बहका दिया जाता ।

[दोनों चले जाते हैं ।]

प्रकाश : [फावड़ा उठाकर] उसका मतलब नारी की शक्ति से है क्या ? वह बहका देने वाली है ? उसने तो मेरी राह में उजाला फैलाया है। [फावड़ा उठाकर मंदिर की चारदीवारी के पीछे जाता है और खोदने लगता है ।]

अंजना : [एक कापी लेकर आती है । प्रकाश को इधर-उधर ढूंढ़कर नेपथ्य में] वहाँ क्या गंदगी और कीचड़ खोदने लगे ?

प्रकाश : इसे फूलों के रंगों में बदल देना चाहता हूँ—यही सबसे बड़ी कला है ।

अंजना : मेरी कला के अभ्यास नहीं देखोगे ?

प्रकाश : अंजना, यह भी क्या तुम्हारी ही कला नहीं है ?

अंजना : मेरी कला तो तब होगी, जब मैं इसमें तुम्हारा हाथ बटाऊँगी ।

प्रकाश : [फावड़ा लेकर वहाँ पर आ जाता है ।] हाँ गाँव के तमाम

गंदे पानी को फूल और तरकारियों की क्यारियों में बदल देंगे तो इस बदबू के बदले लोगों को सुदर दृश्यों से शांति मिलेगी और रोग फैलाने वाले कीड़ों का कारण मिटकर गाँव की तंदुरुस्ती बढ़ेगी। [फावड़ा अलग रख देता है।]

[वह अंजना के साथ चबूतरे पर बैठकर उसकी कापी देखने लगता है। गीत फेड आॉउट हो जाता है। मंदिर के भीतर से एक मैली चादर में लिपटा हुआ कोई निकलता है और बाहर को चला जाता है। प्रकाश कॉपी देखना छोड़कर उसे ही देखता रह जाता है।]

प्रकाश : [शक में पड़कर] अंजना, कौन था यह जो अभी बाहर को गया? इतना ढँका हुआ कि पैर भी नहीं दिखाई पड़े।

अंजना : एक बटोही के पैरों की इतनी चिंता, मेरे हाथों की कारागरी नहीं देखते?

प्रकाश : तुम तो प्राणों में साँस बनकर समाई हो

अंजना : झूठी बात! क्यों है ऐसा?

प्रकाश : अपने इस अप्रतिम रूप से पूछो।

अंजना : मेरा कैसा रूप? तुम भूले ही हुए हो। यह रूप सब मिट्टी है। मिट्टी का कैसा रूप?

प्रकाश : हाँ अंजना, भूल गया! मिट्टी का रूप! कुछ और है! कितना सुंदर और उजला मेरा गाँव—जिसके हरे-भरे खेतों पर भारत की संस्कृति साँस ले रही है, उसके नगर जीवित हैं।

अंजना : छोड़ो, मैं जाती हूँ। [चली जाती है।]

प्रकाश : [चिंतित हो उसकी दिशा में देखता रहता है।]

शंकर : [नेपथ्य में चिल्लाता है।] छोड़-छोड़ मरने क्यों नहीं दिया

मुझे ? क्यों बचाकर ले आया ?

भरोसे : [मैली चादर में लिपटे हुए दोनों हाथों-पैरों में पट्टी बँधे शंकर को लाकर चबूतरे पर रखता है।] धर्म और कानून दोनों की निगाहों में अपने को मारना पाप है। मालिक जीने से ऐसी घिन क्यों हो गई तुम्हें ?

प्रकाश : [अंजना की चिंता छोड़ उधर आकृष्ट हो जाता है।]

शंकर : होती क्यों नहीं ? मेरा वेटा और बहू दोनों मुझे छोड़कर चले गए ऐसी असहाय हालत में।

प्रकाश : आपकी देख-रेख के लिए वह मुझसे कह गया था !

शंकर : मुझे कुएँ में कूदकर मरने से क्यों वचाया तुमने ?

भरोसे : भगवान की इच्छा।

शंकर : उसकी कैसी इच्छा है यह ? वचाने को क्या तुम्हें ही आना था मुझे ? [घृणा से उसे देखता है।]

प्रकाश : पुजारी जी, ऐसे कठोर वचन क्यों मुंह से निकालते हो ? भयानक पाप से वचाने वाले के लिए तुम्हें कृतज्ञ होना चाहिए, न कि उसकी ऐसी घृणा !

शंकर : यही तो कह रहा हूँ क्यों वचा दिया। [रोते हुए] इस जीवन से ऊब कर मैं मौत को पुकारता हुआ चला गया और इस दुश्मन ने मेरी आई हुई मौत भगा दी। [चादर के भीतर से अपने दोनों पट्टी बँधे हुए हाथ वाहर निकालता है।] कौन जानता है मेरा दुःख-दर्द ? पिछले तीन महीनों से मैं दिन-रात तड़प रहा हूँ। किसे नींद और भूख है ?

भरोसे : [वड़े प्रेम से उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर अपने माथे से लगाता है।] घवराइए नहीं, मालिक

घवराइए नहीं। यह सेवक हाजिर है। क्या हो गया आपके हाथों में ?

शंकर : क्या वताऊं क्या हो गया ? जिसे देखकर मेरा वेटा अपनी वहू को लेकर भाग गया, क्या कहूँ उसे ? वहुत दिन तक हमने इसे दाद या खुजली नाम दिया। लेकिन, लेकिन [रोने लगता है।] हाय ! क्यों वचा लाए तुम मुझे ? एक ही दवा थी इसकी—मौत !

प्रकाश : किस-किस की दवा की आपने ?

शंकर : शर्म के मारे मैंने किसी को दिखाया भी तो नहीं। तुम भी तो दवा वाँटते हो ? प्रकाश, पहचानो तो सही, मैंने क्या पाप किए हैं ? ओह ! एक-एक उँगली धपक रही है। कल से हाथ-पैर दोनों में से कोई भी धोया नहीं गया है—दवा लगाना तो दूर की वात !

भरोसे : केवल यही छोटी-सी वात ! मालिक, आप वेफिकर रहें, मैं रोज धो दूँगा इन्हें दोनों वखत।

शंकर : तुम धो दोगे, तुम्हें घिन नहीं लगेगी ?

भरोसे : मरे जानवरो की खालें साफ करता हूँ। आपका यह हाथ मेरी पूजा का देवता है।

शंकर : लेकिन सड़ा हुआ है। इससे वदवू आती है। इसे देखकर मेरी वहू और वेटे को क़ै हो जाती थी। उन्होंने जव तरह-तरह के वहाने वनाए, तो मैंने दोनों को लात मार कर घर से निकाल दिया। और तुम कहते हो, तुम्हें घिन नहीं लगेगी ?

भरोसे : नहीं कुछ नहीं, यह सव एक खयाल है। जैसा भी मान

लिया। खाद की बदबू के दूसरे सिरे पर कितना सुन्दर और खुशबूदार फूल खिलता है, सभी जानते हैं।

शंकर : [उसके कंधे पर बड़े प्रेम से अपनी कोहनी रखता है।]अंधेरे उजाले के ये दोनों सिरे हैं। मैंने इन्हें नहीं पहचाना, [करा-हता है।] चलो।

भरोसे : हाँ, आपको बड़ी तकलीफ जान पड़ती है। घाव·धोने से चैन पड़ेगा, चलिए। [जाते-जाते रुक जाता है।] लेकिन कहाँ ?·

शंकर : [उसके पीछे चलते हुए] रुक क्यों गए ? जब अपने अंश से पैदा हुए बेटे के लिए ये द्वार बंद हो गए तो भरोसे, तेरे लिए ये खुल न पड़ेंगे क्या ? तू हिमालय की भाँति पवित्र है। मैंने तेरा हृदय नहीं पहचाना, सिर्फ तेरे मैले हाथ देखे और फटे हुए कपड़े ! आज आँखों का अँधेरा चला गया। चलो, चलो, भीतर चलो ।

भगवान : [सुनता हुआ आता है।] आज तुम्हारे मुख से युग को बोलता हुआ पाकर कोई अचरज नहीं मुझे।

प्रकाश : जाते क्यों नहीं भरोसे ?

भगवान : जिन्हें तुम्हारे इस आँगन में आने से घृणा थी, वही आज तुम्हें अपने मंदिर में ले जा रहे हैं। फिर क्या सोच-विचार है ?

शंकर : बड़ा मतलबी है मनुष्य। मतलब के ही हैं उसके सारे संबंध। मतलब टूट जाने पर बेटा घर से निकाल दिया जा सकता है और मतलब के लिए मैंने भरोसे को मित्र बनाया है। चलो भरोसे !

भगवान : मेरी समझ में तुमने इससे जो घृणा की थी, वही तुम्हारी इस वीमारी में फूट पड़ी । अव जव तुमने इससे मित्रता की है तो तुम अपने प्रेम ही से ठीक हो जाओगे । भरोसे, जव पुजारी जी तुम्हें ले जा रहे हैं, तो तुम हमारी तरफ देख-देख कर क्यों अटक रहे हो ? [उसे ठेलकर मंदिर के भीतर कर देता है ।] भगवान का धन्यवाद है । प्रकाश, उपदेश से कोई नहीं पतियाता, आज इसकी कीमत इन्हें मालूम हुई तो यह पवित्र हो गया । चलो, ठीक हुआ ।

प्रकाश : इस अछूत की प्रतिष्ठा से गाँव की गंदगी अव दूर हो जाएगी । मेरे ऐसा विश्वास जाग पड़ा । अव हमारी मेहनत सफल हो जाएगी । मैं भी देखूँ वीमारी क्या है ? [मंदिर को जाता है ।]

भगवान : मैं भी देख लूँ । [जैसे ही जाना चाहता है ।]

जुगत : [आते हुए पुकारता है] अजी नंवरदार जी सुनिए । [नेपथ्य को इशारा करता है ।]

भगवान : [जाते-जाते रुक जाता है ।] क्या है ?

रामदास : कौन हैं भगवान जी ?

जुगत : [भगवान की तरफ इशारा कर] ये शहर से आए हैं, आपसे मिलने । क्यों जी क्या किसी की चिट्ठी लाए हो ?

रामदास : [हाथ जोड़ता है ।] मेरा नाम रामदास है । आपकी चिट्ठी मिल गई थी मुझे । मैंने अपने लड़के के लिए आपकी लड़की माँगी थी न ? मैं उसी को देखने आया हूँ ।

भगवान : विराजिए । जुगत, जा रे कोई दरी ले आ और अंजना से कह दे एक गिलास में शर्वत बनाकर दे जाय ।

[जुगत भगवान के घर जाता है ।]

भगवान : मैं गरीब आदमी हूँ, आपकी क्या खातिर कर सकता हूं ?

रामदास : आपके त्याग और तपस्या की बड़ी महिमा सुनी है हमने । आप बड़े साधु और परोपकारी जीव हैं । आपने अपनी संपत्ति सब गाँव के उपकार में लगाई है ।

भगवान : भाई, मेरे पास पैसा नहीं ।

रामदास : मुझे पैसे का लालच नहीं । मेरा लड़का नौकर है और सीधे आचरण का है ।

भगवान : मेरी लड़की तो पढ़ी-लिखी भी नहीं है कुछ ।

[जुगत दरी लाकर चबूतरे पर बिछा फिर भीतर चला जाता है ।]

रामदास : पढ़ाई-लिखाई तो एक तरह की सजावट है । तंदुरुस्ती के लिए सजावट क्या चाहिए ?

[जुगत एक भरा गिलास लेकर आता दिखाई देता है ।]

भगवान : [दूर ही से] अरे मूर्ख मैंने तुझसे नहीं कहा था ।

जुगत : अजी शर्बत वही ला रही हैं । यह तो मैं सिर्फ इनके हाथ-वाथ धोने को पानी लाया हूँ । [रामदास के हाथ धुलाता है ।]

रामदास : आपके गाँव की क्या हालत है ?

भगवान् : कैसी देख रहे हैं आप ? हालत ठीक होते-होते ही तो होगी। किसी एक का काम तो यह है नहीं । एक-एक ठीक हो जायँ तो सब ठीक हो जायँ ।

रामदास : आपका गाँव कुछ जागता हुआ सा जान तो पड़ता है ।

भगवान् : स्वतंत्रता-सूर्य के निकल आने पर उजाला फैलेगा ही हर जगह ।

रामदास : स्वतंत्रता की जय हो !

भगवान् : किसान के सिर का बोझ कंधे पर आया है, अभी हल्का होने में कुछ समय लगेगा ।

[अंजना एक थाली में शर्बत के दो गिलास रखकर लाती है ।]

रामदास : [अधीरता से] यही है ?

भगवान् : हां यही है वह मेरी लड़की, अंजना इसका नाम है ।

अंजना : [दोनों को एक-एक गिलास देकर रामदास से] नमस्ते ।

रामदास : नमस्ते ! [सिर से पैर तक अंजना को देखता है ।] केवल एक ही चावल परखा जाता है । बड़ी सौम्य और शांत तुम्हारी यह लड़की है । [शर्बत पीता है ।]

अंजना : [शर्माकर चली जाती है ।]

भगवान् : लेकिन मैं गरीब किसान हूँ । मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है । [शर्बत पीता है ।]

रामदास : मेरा बेटा भी सुधार चाहता है । मैं भी समझता हूँ, कन्या गुणवती हो तो दहेज की कोई आवश्यकता नहीं । [उठने लगता है ।]

भगवान् : यह क्या ?

रामदास : मैंने देख लिया, मैं राजी हूँ ।

भगवान् : ऐसी जल्दी क्या है ? आज यहीं रहिए न ? और भी तो कुछ देखिए ।

रामदास : अधिक आवश्यकता ही नहीं है ।

भगवान् : समय अधिक हो चला है ।

रामदास : यह संबंध हो जाने पर फिर कई बार आऊँगा । आज

जरूरी जाना है मुझे। सवारी में आया हूँ, इक्का बाहर खड़ा है। आप विराजिए। नमस्ते। [चला जाता है।]

भगवान् : [उसके साथ-साथ कुछ दूर जाकर] नमस्ते !

जुगत : [सिर खुजाकर] लेकिन···[कहते-कहते रुक जाता है।]

भगवान् : मेरे सिर का बोझ उतरने देना क्यों नहीं चाहता तू ! मेरी आत्मा कह रही है, अंजना के लिए यह संबंध ईश्वर का रचा हुआ है। तेरे क्या संशय पैदा हो गया ?

भगत : [आता है।] ई कौन आवा रहा ?

जुगत : चुप, बातें करने दे। [भगवान् से] गाँव की लड़की शहर में देना ठीक नहीं।

भगत : हमारा गाँव तो अब शहर हुआ जात है।

भगवान् : जुगत, मैं तुमसे कोई राय नहीं ले रहा हूँ।

प्रकाश : [मंदिर से आता है।] मेरी समझ में बीमारी ऐसी गंभीर नहीं है। भगवान् की विचित्र माया है। जिस भरोसे से उन्हें ऐसी घृणा थी, वही आखिर उनके काम आया।

भगवान् : प्रकाश, तुमसे एक बात कहनी है मुझे। [चुप हो जाता है] [अंजना अपने घर के दरवाजे पर आकर बड़ी आकुल दृष्टि से उधर देखकर फिर भीतर चली जाती है।]

प्रकाश : हाँ पिताजी, आप क्या कहना चाहते हैं ?

भगवान् : यही कि अब अंजना को पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रकाश : हम यहाँ स्त्रियों की शिक्षा के लिए जो स्कूल खोलने वाले हैं, अंजना उसमें मास्टरनी बनेगी। उसे बिना पढ़ाए कैसे काम चलेगा ?

भगवान् : नहीं प्रकाश, जीवन का कोई ठीक नहीं है। अपने कर्त्तव्यों

रामदास : स्वतंत्रता की जय हो !

भगवान् : किसान के सिर का वोझ कंधे पर ग्राया है, ग्रभी हल्का होने में कुछ समय लगेगा।

[ग्रंजना एक थाली में शर्वत के दो गिलास रखकर लाती है।]

रामदास : [ग्रधीरता से] यही है ?

भगवान् : हां यही है वह मेरी लड़की, ग्रंजना इसका नाम है।

अंजना : [दोनों को एक-एक गिलास देकर रामदास से] नमस्ते।

रामदास : नमस्ते ! [सिर से पैर तक ग्रंजना को देखता है।] केवल एक ही चावल परखा जाता है। बड़ी सौम्य ग्रौर शांत तुम्हारी यह लड़की है। [शर्वत पीता है।]

अंजना : [शर्माकर चली जाती है।]

भगवान् : लेकिन मैं गरीब किसान हूँ। मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है। [शर्वत पीता है।]

रामदास : मेरा वेटा भी सुधार चाहता है। मैं भी समझता हूँ, कन्या गुणवती हो तो दहेज की कोई ग्रावश्यकता नहीं। [उठने लगता है।]

भगवान् : यह क्या ?

रामदास : मैंने देख लिया, मैं राजी हूँ।

भगवान् : ऐसी जल्दी क्या है ? ग्राज यहीं रहिए न ? ग्रौर भी तो कुछ देखिए।

रामदास : ग्रधिक ग्रावश्यकता ही नहीं है।

भगवान् : समय ग्रधिक हो चला है।

रामदास : यह संबंध हो जाने पर फिर कई वार ग्राऊँगा। ग्राज

जरूरी जाना है मुझे। सवारी में आया हूँ, इक्का बाहर खड़ा है। आप विराजिए। नमस्ते। [चला जाता है।]

भगवान् : [उसके साथ-साथ कुछ दूर जाकर] नमस्ते !

जुगत : [सिर खुजाकर] लेकिन···[कहते-कहते रुक जाता है।]

भगवान् : मेरे सिर का बोझ उतरने देना क्यों नहीं चाहता तू ! मेरी आत्मा कह रही है, अंजना के लिए यह संबंध ईश्वर का रचा हुआ है। तेरे क्या संशय पैदा हो गया ?

भगत : [आता है।] ई कौन आवा रहा ?

जुगत : चुप, बातें करने दे। [भगवान् से] गाँव की लड़की शहर में देना ठीक नहीं।

भगत : हमारा गाँव तो अब शहर हुआ जात है।

भगवान् : जुगत, मैं तुमसे कोई राय नहीं ले रहा हूँ।

प्रकाश : [मंदिर से आता है।] मेरी समझ में बीमारी ऐसी गंभीर नहीं है। भगवान् की विचित्र माया है। जिस भरोसे से उन्हें ऐसी घृणा थी, वही आखिर उनके काम आया।

भगवान् : प्रकाश, तुमसे एक बात कहनी है मुझे। [चुप हो जाता है] [अंजना अपने घर के दरवाजे पर आकर बड़ी आकुल दृष्टि से उधर देखकर फिर भीतर चली जाती है।]

प्रकाश : हाँ पिताजी, आप क्या कहना चाहते हैं ?

भगवान् : यही कि अब अंजना को पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रकाश : हम यहाँ स्त्रियों की शिक्षा के लिए जो स्कूल खोलने वाले हैं, अंजना उसमें मास्टरनी बनेगी। उसे बिना पढ़ाए कैसे काम चलेगा ?

भगवान् : नहीं प्रकाश, जीवन का कोई ठीक नहीं है। अपने कर्त्तव्यों

को कल पर टाल नहीं सकते। आज ही न-जाने क्या हो जाय ? इसीलिए जल्दी-से जल्दी योजना की शादी तय हो तो बड़ा भारी बोझ उतर जाय। उसे शहर से माँगने आए हैं।

प्रकाश : [स्तंभित होकर सुनता है।] लेकिन पिता जी—

जुगत : लेकिन पिताजी—

भगत : मुला पिताजी—

अंजना : [द्वार पर खड़ी होकर] लेकिन पिता जी हम यहीं शहर बना रहे हैं।

भगवान् : कुछ भी हो अंजना, घर के भीतर ही रहो, तुम्हारा दायरा वहीं पर है। [अंजना को लेकर घर के भीतर चला जाता है।]

[प्रकाश हाथ में फावड़ा लेकर उदास हो जाता है।]

भगत : [भगत उसके हाथ से फावड़ा छीन लेता है। पीछे जाकर नाली ठीक करता है।

जुगत : प्रकाश भाई, तुम उदास क्यों हो गए ?

[प्रकाश चबूतरे पर दोनों हाथों से सिर पकड़कर उदास बैठ जाता है। भगत फावड़ा लिए आता है।]

भगत : भगवान् काका काहे रिसाय गएन हैं। हमका समुझि परत है।

जुगत : [दूसरी ओर से प्रकाश के पास खड़ा होता है।] क्यों, किस फेर में पड़ गए ?

प्रकाश : हाँ जुगत, फेर में पड़ गया, इसी के इस मिट्टी के फेर में ! जिसके तत्त्वों से बना है और जिसके उपजाए हुए दाने पर मेरी साँस ठहरी है।

जुगत : हमने कुएँ को गंदे पानी से बचाने के लिए उसकी जगत ऊँची की थी। उसकी दो ईंटें निकाल ले गया कोई। वे जो ईंधन बचाने और धुवाँ बाहर फेंकने के नए चूल्हे बनाने सिखाए हैं न तुमने, जरूर उन्हीं को बनाने के लिए !

प्रकाश : जाने भी दो एक भली बात तो की उसने।

जुगत : इस तरह एक चीज बिगाड़ कर दूसरी चीज नहीं सुधारी जा सकती। हवा-पानी को गंदा करना, सारे गाँव के लिए बीमारी को न्यौता देना है।

प्रकाश : समझा देंगे उन्हें। चलो, बिगड़ते-बिगड़ते ही काम बना करते हैं। जाओ, भगत तुम भी, वन-महोत्सव के गड्ढों को देख लो। पेड़ी, लोगों और बाजे-गाजे का इंतजाम करो।

[जुगत भगत को लेकर जाता है। मंदिर से भरोसे आता है।]

भरोसे : मैंने उनके घाव धोकर पट्टी बाँध दी है। उससे बड़ी ठंडक पड़ी है उनको, आँखें लग गईं। मेरा विचार है, उनकी बीमारी इतनी डरावनी नहीं है, लेकिन बड़ी लापरवाही उनके इलाज में की गई है। मैं उनके दवा के लिए वैद्यजी के पास जाता हूँ, उनके खाने-पीने का क्या होगा ? [कोई जवाब न पाकर बाहर को चला जाता है।]

[प्रकाश फावड़ा लेकर फिर खोदने लगता है। उसे कुछ याद आती है और फावड़ा पकड़ कर उदास बैठ जाता है। अंजना गली की राह से आकर कॉपी लिए हुए प्रकाश के पीछे खड़ी हो जाती है। उसे कोई पता नहीं चलता।]

अंजना : [पीछे से पुकारती है।] प्रकाश !

प्रकाश : [घबराकर उधर देखता है ।] कौन है ? नहीं अंजना, हमारे विचारों की एकता टूट गई । अब तुम्हें अपने पिता जी की इच्छा के विरुद्ध कोई काम करना उचित नहीं, न इस तरह मेरे साथ भेंट करनी है ।

अंजना : क्यों ? तुम आज यह क्या बोल रहे हो ?

प्रकाश : तुम शहर में जाओगी ।

अंजना : वहाँ जाने का काम ही क्या है ? हम शहर की सभी सुख-सुविधाओं को यहीं उपजा रहे हैं न ?

प्रकाश : जान पड़ता है, तुम्हारे पिताजी से मेरी शिकायत कर दी गई है ।

अंजना : क्या कहा ? किसने ? पिताजी से साफ-साफ बताना पड़ेगा ।

[अपने घर के द्वार पर भगवान् आकर खड़ा होता है ।]

भगवान् : यहाँ आओ । सब बता दिया जायगा । खबरदार ! जहाँ तुम्हें भावे वहाँ इस तरह घूमने के लिए अब तुम स्वतंत्र नहीं हो । चलो भीतर !

[भगवान् के संकेत पर अंजना अपने भीतर जाती है, फिर पिता भी । प्रकाश देखता ही रह जाता है । सिर पर एक टोकरी में कुछ कूड़ा-कचरा लेकर रोशन आता है ।]

रोशन : [कूड़े की टोकरी दिखाकर] लो तुम भी देख लो इसे ।

प्रकाश : यह गंदा कूड़ा क्या दिखा रहा है मुझे ?

रोशन : गाँव सभा ने यह नियम पास किया है, जिसके दरवाजे पर कूड़ेदान से बाहर बिखरा हुआ कूड़ा मिलेगा उसे सारे गाँव को सिर पर रखकर दिखाना होगा ।

प्रकाश : सभा के पास किए हुए नियम को मन प्राण से मानना तेरा धर्म है।

रोशन : धर्म तो है, लेकिन...

प्रकाश : अरे क्या लेकिन, सच्चाई छिपी रह नहीं सकती। तूने बैलों को वेचकर यहाँ गाँव में होटल खोल दिया।

रोशन : इस गाँव को जव आप शहर वना रहे हैं तो बिना होटल के यह शहर कैसे वनेगा ?

प्रकाश : मुझे जमाने के बदलते हुए रूप और दस्तूर से कोई दुश्मनी नहीं है। होटल के बहुत से फायदे भी हैं। लेकिन अगर तूने जुए-ताश-चौपड़ का अड्डा, गाँव में सुस्ती, नशा और नाइतफ़ाकी की ओट बनाई तो ठीक न होगा।

रोशन : नहीं, ऐसा न होगा।

प्रकाश : जा, आज वन-महोत्सव का आरंभ है, जल्दी से तू भी तैयार होकर आ जा।

[प्रकाश ओट में जाकर फिर फावड़ा चलाने लगता है। वहीं भरोसे आकर उससे बातें करता है।]

भरोसे : यहाँ क्या कर रहे हैं आप इस गंदगी में ?

प्रकाश : हरिजन के जीवित रूप तुम थे तो यह उसका वेजान हिस्सा है। तुम्हारी घृणा से सारे देश में एक भयानक मानसिक वीमारी फैली हुई है और इन मैले पानी की नालियों ने सारे गाँव को शरीर की वीमारियाँ दी हैं।

[एक हाथ में लोटा और दूसरे में एक थैला लिए भरोसे के साथ फावड़ा लिए प्रकाश आता है।]

भरोसे : कुछ नालियाँ पक्की वनाकर सोख्ते बना तो दिए गए हैं।

प्रकाश : एक भी गंदे पानी का गड्ढा रह जावेगा तो हर घर में

उससे मक्खियाँ और मच्छर फैल जावेंगे। यह क्या ले आए ?

भरोसे : पुजारी जी के लिए दूध और आम। आप थक गए हैं। कुछ देर आराम कर लें।

प्रकाश : हाँ, शरीर की थकान दिमाग का काम करने से मिटाई जा सकती है और इसका उलटा भी विल्कुल सच ही है।

[प्रकाश चवूतरे में रखे हुए एक चरखे को घुमाने लगता है। भरोसे मंदिर को जाता है। भगवान् आता है।]

भगवान् : कई दिन से तुम चरखे के पीछे लगे हुए हो तुम इसमें क्या ढूंढ़ रहे हो ?

प्रकाश : पिताजी, एक ओर हमें घनी खेती करनी है तो दूसरी ओर लघु उद्योगों को जीवंत करना है। समय की दौड़ में अपने कदम मिलाने के लिए जवान की तरह अगर हम इस चरखे में विजली जोड़ देंगे तो क्या बुराई है। विजली कुछ दिन में यहाँ आ ही जायगी।

भगवान् : विजली और मशीन ये दोनों ही हमारे दुर्भाग्य की सूचनाएँ हैं।

प्रकाश : मैं इसे आपका अंधविश्वास कहूँगा। चरखा-चक्की, बैलगाड़ी अपने-आप में ही क्या मशीनें नहीं हैं ? मशीन की परिभाषा ही पहिया है।

भगवान् : उसे हाथ या पैर से चलाने पर अभिशाप पनपने नहीं पाता। बिजली और भाप का जोड़ ! भयानक है ! घोर भयानक !

प्रकाश : क्या आप रेलगाड़ी का सहयोग नहीं लेते ?

भगवान् : मजबूरी ! मुझे जड़वादी विज्ञान से वड़ी घृणा है।

प्रकाश : मैं भी पहले ऐसा ही समझता था। विज्ञान ने जो उन्नति की है उसका साथ न देने से जाति की तरक्की मारी जायगी। घृणा घृणा ही है, चाहे वह मनुष्य के लिए अछूत के रूप में हो या मशीनरी के लिए लोहे की शकल में।

भगवान् : मशीन ने हमें बड़ा आरामतलब बना दिया है। तन और मन दोनों में कमजोर। इसने थोड़े से लोगों को अधिक अमीर बनाकर ज्यादे लोगों को भिखारी और बेकार कर दिया।

प्रकाश : पिताजी, मुझे बैलगाड़ी का विरोध नहीं है, लेकिन सैकड़ों मील की यात्रा पर भी बैलगाड़ी को हाँकना बुद्धिमानी नहीं है। दुनियाँ में जो एटम की ताकत प्रकट हुई है, उसके सामने मनुष्य की ये जानी हुई ताकतें हाथ की मजूरी के ही समान हैं।

भगवान् : तुमने अपना धर्म और सिद्धांत बदल दिया !

प्रकाश : स्थिति के बदल जाने पर बड़े-बड़े सिद्धांत सिर्फ अंधविश्वास हो जाते हैं, उन्हें बदल ही देना पड़ेगा। दुनियाँ की आबादी किस तेजी से बढ़ रही है। एक दिन में धरती पर एक लाख मनुष्य बढ़ जाते हैं। पिताजी, उस एटम की शक्ति से इतने आदमियों के ध्वंस हो जाने से क्या यह अच्छा नहीं है कि इनकी परवरिश हो ?

[नेपथ्य में घंटा बजने लगता है।]

भगवान् : यह कैसा घंटा ?

प्रकाश : आज वन-महोत्सव का आरंभ है, यह उसी की सूचना है।

भगवान् : क्या होगा यह पेड़ लगाकर ?

प्रकाश : पिताजी आपके विचारों में कैसा परिवर्तन हो गया। पेड़

लगाकर हमारी वड़ी जरूरत पूरी होगी। विश्वयुद्धों ने हमारे जंगलों को समाप्त कर दिया। हमें फिर से उन्हें हरा-भरा कर अपने मकान और चूल्हों के लिए लकड़ी तैयार करनी है। इससे हमारे देश की लाखों टन गोवर की खाद जो चूल्हों में जल जाती है, वह हमारी खेती के लिए वच जायगी।

भगवान् : कव वे जंगल पनपेंगे ?

प्रकाश : साहस और उद्योग से क्या नहीं हो जाता ? पेड़ों से भूमि का क्षय भी रुकेगा, पशुओं को चारा मिलेगा, पानी का संचय होगा और उनके कारण वर्षा भी होगी।

[वाजे वजाते हुए और गीत गाते हुए कई लोग आते हैं। भगत के सिर की डलिया में पेड़ों के पौधे हैं। किसी के हाथों में कुदाल और पानी के घड़े हैं।]

जुगत : पहला पेड़ यहाँ पर प्रकाश और अंजना के हाथ से लगाया जायगा।

भगत : अंजना कहाँ है ?

भगवान् : नहीं लगेगा उसके हाथ से।

[इसी समय वाल खुले हाथों के वंधनों को दांतों से काटती हुई अंजना आती है।]

अंजना : क्यों नहीं मैं लगाऊँगी। कहाँ हैं पेड़ ?

भगत : [अंजना को एक पेड़ देता हुआ प्रकाश से] लो तुम दोनों को लगाना होगा यह वरगद का पेड़।

भगवान् : [उस पेड़ को छीनते हुए] नहीं, दोनों नहीं लगा सकते यह एक पेड़।

अंजना : मैं ज़रूर लगाऊँगी।

जुगत : इस शुभ काम में गड़बड़ मत करो ।

भगवान् : प्रकाश के साथ नहीं, अलग लगाओ ।

प्रकाश : मुझे दूसरा पेड़ दो ।

[प्रकाश और अंजना अलग अलग दो पेड़ लेते हैं। फिर बाजे बजते हैं । गीत शुरू होता है और पेड़ लगाए जाते हैं ।]

(यवनिका)

तब तक तुम्हें दोनों जून रोटी मिलेगी। काम आ जाने पर फिर तुम्हारी तनखा बँध जायगी। जमा करो चाहे मकान बनाओ। या शादी करो। तुम्हारे औरत है क्या ?

भिखारी : मर गई।

जुगत : तभी भीख माँगने की अकल आई तुम्हें।

भगत : फिजूल बकवास काहे करत है तू ?

[दोनों उसे लेकर जाते हैं। इधर-उधर देख-भाल करता हुआ प्रकाश आता है।]

अंजना : [अपने घर के द्वार पर खड़ी होकर धीरे-धीरे पुकारती है।] प्रकाश ! प्रकाश ! ! पिता जी इस समय सो रहे हैं।!

प्रकाश : [सुनकर भी नहीं सुनता]

अंजना : [दौड़कर आती है और उसका हाथ पकड़ लेती है] प्रकाश !

प्रकाश : चुप रहो, पिता को धोखा नहीं दे सकते।

अंजना : तुमने एक दिन प्रतिज्ञा की थी।

प्रकाश : और उसी दिन क्या तुमने नहीं कहा था। हाथ छोड़ दो मेरा।

अंजना : क्या कहा था मैंने ?

प्रकाश : कितनी गहराई में गड़े हुए वे शब्द हैं। मानो मेरी हड्डियों में खुदे हुए ! तुमने कहा था, हाड़-चाम के प्रेम से मिट्टी का प्रेम कहीं श्रेष्ठ है। मैं गाँव की ऊसर भूमि को उपजाऊ बना रहा हूँ। कमजोर पेड़-पौधों, जानवरों और नर-नारियों को तंदुरुस्त बनाने की फिक्र में पड़ गया। गाँव की गंदी गली और नालियों को ही नहीं, उसके लोगों के मनों

में जो एक-दूसरे के लिए राग द्वेष का मैल जमा है उसे साफ कर रहा हूँ।

अंजना : यह रास्ता मैंने दिया था तुम्हें ? तुम मानते हो ?

प्रकाश : हाँ योजना।

अंजना : तो अब मैं कहती हूँ···

प्रकाश : क्या कहती हो तुम, रास्ता बदल दो ? ऐसा भी कहीं होता है ? राह का बदलना दुविधा में पड़ जाना है। दुविधा से से किसी की साधना सफल नहीं हुई।

अंजना : और राह दिखाने वाले का हृदय तोड़कर भी किसी की कामना न फलेगी।

प्रकाश : वन-महोत्सव के दिन फिर क्यों तुम्हारे हाथ-पैर बाँधकर तुम्हें कमरे में बंद कर दिया गया था ?

अंजना : तब सारे बंधन तोड़कर मैं मुक्त होकर नहीं चली आई थी क्या ? तुम्हारे वन-महोत्सव का आरंभ क्या मैंने इस बरगद के पेड़ से नहीं किया था ?

प्रकाश : [ठंडी साँस लेकर] वहीं पर से हमारा साथ छूट गया अंजना ! जाने भी दो, हमें अपनी खुदगरजी पर गाँव की भलाई निछावर कर देनी चाहिए। जाओ, पिताजी की इच्छा के विरुद्ध हमें कुछ भी करना नहीं है। उन्हें नींद में समझकर धोखा न खाओ। आत्मा कभी नहीं सोती और उसके लिए कोई दूरी या ओट नहीं है।

[अंजना धीरे-धीरे उदास होती हुई पीछे को हटकर अपने घर चली जाती है।]

[एक हाथ में ट्रंक एक में गठरी लिए डरते हुए गणेश आता

तीसरा अंक

[वही दृश्य : दीवारें उजली पुत गई हैं और उन पर लक्ष्मी-सरस्वती और गीत-नृत्य के उल्लास-भरे रेखा-चित्र उभारे गए हैं, कहीं आदर्श-वाक्य भी लिखे गए हैं। दूर पर दिखाई देने वाले घरों में चिमनियाँ और खिड़कियाँ भी बनी दिखाई देती हैं। जुगत और भगत अपने-अपने कंधों पर एक-एक कुदाली और हाथों में एक-एक किताब लिए आते हैं।]

जुगत : अरे भगत, पढ़ ले रे, आँख खुल जायगी। एक दुनिया और परगट हो जाएगी इस दुनिया के भीतर।

भगत : लालच केर दुनिया ! नाहीं भइया, मेरे लेखे तो पढ़ाई-लिखाई से आदमी सुस्त हो जात है। ओकर मन फिर खेती-पाती माँ लागत नाहीं।

जुगत : हमारा गाँव शहर बनता जा रहा है और यह फरक तेरी खोपड़ी में अभी तक खुला ही नहीं। अरे गाँव के माने दिनभर हड्डी-तोड़ काम और रात को नहीं खाने को भरपेट। शहर माने काम हलका-फुलका और खाने की मौज़-बहार !

भगत : ई सब तोहार-अस काम-चोर केरि बात ! जौन मनइ बिना पूरा काम किए भरपूर खाइ लेत है, ओ के भगवान् माफ नाहीं करवै करि हैं। बेईमानी क' पइसा कब-हू ठहर नाहीं सकित है—ऊ बेमारी अउर मुकदमा केरि नाली माँ बहि जात है। कड़ी मेहनत क' आधी रोटी बड़ी मीठ बाय।

जुगत : तू बड़ा पुरातन-पंथी है। तुझे तो किसी जंगल में रहना चाहिए था। यहाँ की पक्की बन चुकी नालियों और सड़कें तेरी परछाईं के लायक नहीं।

भगत : ई सब हमार मेहनत से बनल होई, ए माँ तू रहिबे ? देखूँ कैसन ?

[भीख माँगता हुआ एक भिखारी आता है।]

भिखारी : पहले यह गाँव मेरी झोली भर देता था। आज इतना साफ-सुथरा और बढ़-चढ़कर होने पर क्यों इसकी मति मारी गई। जहाँ जाता हूँ, कोई नहीं सुनता।

भगत : इहाँ मेहनत केरि रोटी खावा जात है।

भिखारी : मैं क्या मेहनत करूँ ?

जुगत : दर-दर भटकने की मेहनत तो कर ही रहे हो। एक जगह बैठकर ही इतने हाथ-पैर हिलाओगे तो इज्जत की रोटी मिल जावेगी, किसी से माँगना नहीं पड़ेगा।

भगत : तोर नसीहत माँ कमी नाँही।

जुगत : चुप-चुप ज्यादा बकते नहीं। [भिखारी से] चलो हमारी उद्योग कुटी में। देखो, स्वाद मिहनत की रोटी में है। दरी-निवाड़, कंबल-चटाई, बेत बाँस, ऊन-सूत, मिट्टी-पत्थर, लकड़ी-लोहा—जिसका काम तुम्हें पसंद हो, उसे सीखो।

तव तक तुम्हें दोनों जून रोटी मिलेगी। काम आ जाने पर फिर तुम्हारी तनखा वँध जायगी। जमा करो चाहे मकान वनाओ। या शादी करो। तुम्हारे औरत है क्या ?

भिखारी : मर गई।

जुगत : तभी भीख माँगने की अकल आई तुम्हें।

भगत : फिजूल वकवास काहे करत है तू ?

[दोनों उसे लेकर जाते हैं। इधर-उधर देख-भाल करता हुआ प्रकाश आता है।]

अंजना : [अपने घर के द्वार पर खड़ी होकर धीरे-धीरे पुकारती है।] प्रकाश ! प्रकाश !! पिता जी इस समय सो रहे हैं।!

प्रकाश : [सुनकर भी नहीं सुनता]

अंजना : [दौड़कर आती है और उसका हाथ पकड़ लेती है] प्रकाश !

प्रकाश : चुप रहो, पिता को धोखा नहीं दे सकते।

अंजना : तुमने एक दिन प्रतिज्ञा की थी।

प्रकाश : और उसी दिन क्या तुमने नहीं कहा था। हाथ छोड़ दो मेरा।

अंजना : क्या कहा था मैंने ?

प्रकाश : कितनी गहराई में गड़े हुए वे शब्द हैं। मानो मेरी हड्डियों में खुदे हुए ! तुमने कहा था, हाड़-चाम के प्रेम से मिट्टी का प्रेम कहीं श्रेष्ठ है। मैं गाँव की ऊसर भूमि को उपजाऊ वना रहा हूँ। कमजोर पेड़-पौधों, जानवरों और नर-नारियों को तंदुरुस्त वनाने की फिक्र में पड़ गया। गाँव की गंदी गली और नालियों को ही नहीं, उसके लोगों के मनों

में जो एक-दूसरे के लिए राग द्वेष का मैल जमा है उसे साफ कर रहा हूँ ।

अंजना : यह रास्ता मैंने दिया था तुम्हें ? तुम मानते हो ?

प्रकाश : हाँ योजना ।

अंजना : तो अब मैं कहती हूँ···

प्रकाश : क्या कहती हो तुम, रास्ता बदल दो ? ऐसा भी कहीं होता है ? राह का बदलना दुविधा में पड़ जाना है । दुविधा से से किसी की साधना सफल नहीं हुई ।

अंजना : और राह दिखाने वाले का हृदय तोड़कर भी किसी की कामना न फलेगी ।

प्रकाश : वन-महोत्सव के दिन फिर क्यों तुम्हारे हाथ-पैर बाँधकर तुम्हें कमरे में बंद कर दिया गया था ?

अंजना : तब सारे बंधन तोड़कर मैं मुक्त होकर नहीं चली आई थी क्या ? तुम्हारे वन-महोत्सव का आरंभ क्या मैंने इस बरगद के पेड़ से नहीं किया था ?

प्रकाश : [ठंडी साँस लेकर] वहीं पर से हमारा साथ छूट गया अंजना ! जाने भी दो, हमें अपनी खुदगरजी पर गाँव की भलाई निछावर कर देनी चाहिए । जाओ, पिताजी की इच्छा के विरुद्ध हमें कुछ भी करना नहीं है । उन्हें नींद में समझकर धोखा न खाओ । आत्मा कभी नहीं सोती और उसके लिए कोई दूरी या ओट नहीं है ।

[अंजना धीरे-धीरे उदास होती हुई पीछे को हटकर अपने घर चली जाती है ।]

[एक हाथ में ट्रंक एक में गठरी लिए डरते हुए गणेश आता

है। उसके पीछे उसकी बहू आती है।]

प्रकाश : बड़े दिनों में आए भाई गणेश, तुमने तो कोई चिट्ठी भी नहीं भेजी।

गणेश : क्या कहूं ? पहुँचाने गया था इन्हें। जाते ही वहाँ हो गया खुद बीमार, उसके बाद इनकी बारी आई। दो महीने इनके अच्छे होने में लग गए।···तुम तो अच्छे हो और पिता जी···मेरे पिताजी कैसे हैं, अच्छे हैं ?

प्रकाश : बड़े अच्छे पुत्र निकले तुम ? बड़े डरते-डरते पूछ रहे हो ? कैसी खराब हालत में छोड़ गए थे तुम उन्हें ?

गणेश : अब कैसे हैं वे ?

प्रकाश : ठीक हैं।

गणेश : किसकी दवा से ?

प्रकाश : सच्ची सेवा भी दवा का काम करती है। भरोसे के पास मिली वह उन्हें। समझे तुम ? जनम-भर जिसकी परछाई से वे घृणा करते रहे। और तुम्हें अपने हृदय का ही एक हिस्सा समझते थे वे।

गणेश : बड़ा धोखा हो गया, बड़ी भूल हो गई। मैं प्रायश्चित करूँगा। कहाँ है वह भरोसे ? मैं उसका पैर धोकर उसकी घूंट पिऊँगा। और यह गाँव कैसे इतना उजला हो गया ? इसकी दवा किसने की ?

प्रकाश : यह भी उसी की करामात है। तुम्हारे पिता जी की ही बीमारी इस गाँव को भी थी। उनकी नजरों में भरोसे की पवित्रता के बढ़ जाने से सब कायल हो गए। उसकी गंदगी के मिटते ही सारे गाँव का मैल धुल गया।

गणेश : वह मकान की चिमनी !

प्रकाश : हाँ वह नए तरह का चूल्हा है— मगन चूल्हा ! कम-से-कम लकड़ी में अधिक-से-अधिक भोजन पकता है और धुवाँ सब-का-सब वाहर !

गणेश : हाँ, गंदे पानी की जो काली रेखाएँ साँपों-सी सड़कों पर लहराती थीं, वे धुवाँ वनकर चिमनियों से आकाश में उड़ती चली जा रही हैं ! दूर-दूर तक तुम्हारा यश फैल गया ।

प्रकाश : लोगों का परिश्रम और शासन की सहायता कह सकते हो । फिर भगवान् की कृपा कि सबने मिलकर एक उद्देश्य के लिए काम किया ।

गणेश : [माया से] चल, वे अच्छे हो गए अब क्या डर है ? कुछ डाटें-डपटें तो घबराना नहीं । कह देना, हम दोनों बीमार हो गए थे, मरते-मरते बचे हैं ।

माया : नहीं, पहले तुम जाओ ।

गणेश : मुझे देखकर वे एक दम ताव खा जायेंगे । तुम्हारे घूंघट पर उन्हें दया आ जायगी ।

[जब माया आगे नहीं बढ़ती तो गणेश विवश होकर भारी पैरों से आगे-आगे जाता है । माया उसके पीछे-पीछे जाती है । बाहर से भरोसे आता है, उसके हाथ में एक खाली टोकरी है ।]

भरोसे : [हाथ जोड़कर] धन्य है गाँव के किसानों की उन औरतों को जो तारों की छाँह में सिर पर घर और गौशाला के कूड़े की टोकरी लेकर कंपोस्ट खाद के गढ्ढे में डाल आती हैं ।

प्रकाश : भरोसे, वे पुरुष भी तो धन्य हैं जो शौच के लिए नियत गड्ढों में जाते हैं और नियमपूर्वक उन्हें मिट्टी से ढँक आते हैं। एक मनुष्य के मैल से साल भर में काफी खाद तैयार होती है। चीनी-जापानी इसका कोई कण फिजूल नहीं जाने देते।

[एकाएक मंदिर में शोर सुनाई देता है—"निकल जाओ, निकल जाओ!" सब उधर सुनते हुए चुप हो जाते हैं।] गणेश और माया दोनों तिरस्कृत होकर मंदिर से बाहर निकलते हैं। उनके पीछे हाथ में लठ उठाए गुस्से में शंकर आता है।]

शंकर : निकल जाओ! निकल जाओ!! चांडालो! क्या यह तुम्हारा घर है? नहीं है, हरगिज नहीं है। तुम अब मुझे धोखा नहीं दे सकते।

गणेश : [ट्रंक और गठरी अलग रख, हाथ जोड़ शंकर के पैरों पर गिरता है।] पिता जी, अपने इस अपराधी बेटे को माफ कर दीजिए।

शंकर : मेरा बेटा? कौन कहता है? मेरा बेटा होता तो क्या मेरे संकट के समय मुझे छोड़कर चला जाता? तरह-तरह के दुख-तकलीफ झेलकर जिसका लालन-पालन किया, उसने यह कृतघ्नता दिखाई!

गणेश : पिता जी, आप ही ने तो मुझे लात मारकर निकाल दिया था।

शंकर : [भरोसे की ओर इशारा करे] यह है मेरा बेटा! जिसे जीवन भर दुतकारता रहा, उसने मेरे घावों पर अमृत छिड़ककर मुझे फिर जिंदा कर दिया। इधर आओ भरोसे, इस नालायक को सामने खड़े होकर देखो। दुनिया फैसला देगी, कौन मेरा सच्चा

बेटा है—जो मेरी तकलीफ को देख घबरा कर भाग गया या जो मेरी पीड़ा पर खिंच आया ! प्रकाश, मैं तुम्हें ईमानदार आदमी समझता हूँ। इस बात का तुम्हारे पास क्या जवाब है ?

प्रकाश : पिता को पुत्र के अपराध पर उसे लात मारने का भी अधिकार है और उसके पछतावे पर उसे माफ कर गले से लगा लेने का भी।

शंकर : प्रकाश, तुम बहका रहे हो मुझे।

प्रकाश : नहीं पुजारी जी, मैं सच कह रहा हूँ। एक हठ पर ठहरा हुआ मनुष्य, मनुष्यता का सच्चा नमूना नहीं है। भरोसे पर आपने जो प्रेम किया वह इसका सबूत है।

शंकर : इसकी सेवा ने ही तो उस प्रेम को उभारा। मैंने अपनी जाति के घमंड से वह रोग उपजाया था। इसने रोज सुबह-शाम मेरे पाप के घावों को धोया, उनमें दवा लगाई और मैं अच्छा हो गया। इसने मुझे मनुष्य मात्र से प्रेम करना सिखाया।

गणेश : पिता जी, तो आप अपने इस नादान बेटे से ही क्यों घृणा करने लगे ?

प्रकाश : पुजारी जी, अपराध माफ हो। भरोसे भी बुरा न था, यह गणेश भी नहीं। बुरी तो घृणा है।

भरोसे : [हाथ जोड़ता है।] हाँ मालिक, ठीक तो है यह बात, कर्ज की आखिरी पाई, आग की छोटी-सी चिनगारी, बीमारी की कोई भी अलामात—ऐसे ही नफरत की एक भी चीज हमारे दिल में बाकी रह न जानी चाहिए।

प्रकाश : हाँ पुजारी जी, मेरा भी यही विचार है। गंदगी खुली रह

जायगी तो वह घर-घर बीमारी फैला देने का कारण होगी। उस पर मिट्टी डाल दीजिए, वह मिट जायगी और आपके कर्म की खेती के लिए सोने की खाद में बदल जायगी।

शंकर : तुम सब-के-सब इसी की तरफ हो गए क्या ?

गणेश : क्षमा कीजिए पिताजी, हमसे भारी भूल हुई है। हम दोनों आपके चरणों पर गिरकर [माया का भी हाथ खींचकर पिता के पैरों पर लगाता है।] आपसे माफी माँगते हैं। हमें आपकी सेवा करने का फिर अवसर मिले।

शंकर : भरोसे, तुम्हारी क्या राय है ? तुम मेरे बड़े बेटे हो।

भरोसे : मालिक, बच्चा जब गोद में मैला कर देता है तो मैला साफ कर फेंक दिया जाता है। बच्चा तो फिर छाती से ही लगाया जाता है [गणेश का ट्रंक और गठरी उठा लेता है।]

प्रकाश : लेकिन वह मैला ऐसे ही लापरवाही से पब्लिक की सड़क पर नहीं फेंका जायगा।

भरोसे : मैले के गडढे में।

प्रकाश : ऐसे ही नहीं। उस पर फिर मिट्टी डाल दी जायगी।

गणेश : [ओट से माया की धोती खींच धीरे-धीरे] जा, चली क्यों नहीं जाती जल्दी से भीतर।

[माया धीरे-धीरे भीतर चली जाती है।]

शंकर : [गणेश से] अब आप भी पधारिए न।

प्रकाश : पुजारी जी, गाँव की बाहरी गंदगी हमारे घर, आँगन और गलियों की गंदगी है। भीतर की गंदगी है घर-घर का यह कलह—यह मन का मैल। जब तक भीतर-बाहर दोनों जगहें साफ न रहेंगी, हम सुखी और उन्नत न हो सकेंगे।

[भरोसे गणेश से भीतर जाने का इशारा करता है और उसके पीछे-पीछे उसका वोझ लेकर जाने लगता है।]

शंकर : नहीं, तुम क्या इसके नौकर हो ? तुम्हारा दरजा इससे बढ़ गया।

[गणेश भरोसे के हाथ से अपना सामान लेकर घर के भीतर जाता है। उसके पीछे भरोसे भी जाता है। शंकर भगवान् के घर को जाता है। जुगत और भगत कुछ कंडों को लिए रोशन से लड़ते हुए आते हैं]

रोशन : ला मेरे कंडे। ग्राम-सभा ने कानून बनाया है ! ऐसे बनते हैं क्या वे ? पहले उसे जलाने के ईंधन का इंतजाम करना होगा, तव कानून पास किया जायगा। [उनके हाथ से कंडे छीन लेता है।] हाँ, वड़ा आया।

प्रकाश : क्या है ? क्या वात है ? रोशन झगड़ते क्यों हो ? कानून की इज्जत करना राष्ट्र को वलवान् वनाना है। वह दुनियाँ में आदर पाने की चीज है। वही सभ्यता की पहचान है।

रोशन : कानून है कंडे थापने की मनाही। मैं तो ये जंगल से उठ लाया हूँ। देखिए न।

भगत : [एक कंडा प्रकाश को दिखाते हुए] ए माँ ऊँगली केर निशान ! ई झूठ वोलत है, वकवास करत है।

रोशन : जानवरों की तरह घास या दाने की जुगाली करने को कहते हो तो छीन लो यह सव।

जुगत : बुरा क्या है ? मैंने सुना तो है, पके हुए अनाज से उसकी जान मर जाती है। कच्चा अनाज वहुत ताकतवर होता है।

रोशन : तुम कच्चा ही खाते हो क्या ?

प्रकाश : दे दो ये कंडे ग्राज इसे। लेकिन तुम्हें इस बात को वड़ी गंभीरता से सोचना पड़ेगा। जब तक ये वन-महोत्सव घने जंगलों में नहीं वदल जाते, तव तक किसी को चैन लेना नहीं है। कभी पाला, धूप ग्रौर कभी जानवरों से उनको वचाना है। समझते हो इस फर्ज को ?

रोशन : हाँ।

प्रकाश : [उन दोनों के हाथ से कंडे लेकर रोशन को दे देता है] चलो।

[प्रकाश रोशन के साथ वाहर को चला जाता है। जुगत ग्रौर भगत ग्रपने घर को। भगवान् और शंकर ग्राते हैं।]

भगवान् : भारत के किसान के वारे में कहा जाता है, वह कर्ज में पैदा रोकर जन्म भर कर्ज में ही डूवा रहता है ग्रौर मरते समय वही कर्जदारी वेटों को भी विरासत में दे जाता है।

शंकर : तो फिर जान-वूझ कर ग्राप से भी वही भूल हो, ग्राप सुधारक भी हैं, गाँव के नंवरदार भी। क्या यही ग्राप ग्रपना नमूना लोगों के सामने रखेंगे ?

भगवान् : [व्याकुल होकर] मेरी एक मात्र कन्या ! यों ही कैसे खाली हाथ उसे विदा कर दूँ ? फिर जन्म-भर जिन गाँव वालों के निमंत्रण खाए हैं उनके ऋण से भी तो उऋण होना है।

शंकर : ग्रापकी लड़की का व्याह है। ग्रापके यहाँ निमंत्रण का भूखा कोई नहीं है। मैं पूछता हूँ क्या ग्रापका समधी दहेज का भिखारी होकर ग्रापके दरवाजे पर ग्राया है ?

भगवान् : वे वेटेवाले ठहरे। हर तरह से उनकी वात भारी है। पहले तो उन्होंने कुछ नहीं कहा। फिर ज्यों-ज्यों विवाह की वात

पक्की होती गई उनका लालच बढ़ता गया। अब वे कहते हैं, चूँकि अंजना ने कोई इम्तहान पास नहीं किया है, इस-लिए और किसी चीज़ से उसकी यह कमी पूरी हो जानी चाहिए।

शंकर : मैं तुम्हारी जगह होता तो किसी दूसरी जगह अपनी लड़की की शादी ठहराता।

भगवान् : सब लोगों पर यह बात खुल चुकी है कि अंजना का विवाह वहाँ पक्का हो गया है। अब अगर वह शादी वहाँ टूटती है तो फिर मुझे बड़ी कठिनाई पड़ जायगी। दूसरी जगह शादी तय हो न सकेगी। लोग समझेंगे जरूर लड़की में कोई खोट है।

शंकर : आप को तो अपने ही समान अपनी स्थिति, रहन-सहन और विचारवाला वर ढूँढ़ना था अंजना के लिए। हम लोग तो सब यही सोचते थे उसका विवाह प्रकाश के साथ हो जायगा। क्या बुरा है वह ?

भगवान् : हाँ, बहुत दिन तक मैंने भी यही सोचा था, लेकिन फिर मेरा विचार बदल गया।

शंकर : क्यों ऐसी जरूरत आ पड़ी ?

भगवान् : पुजारी जी, मैं खाने-पीने की तकलीफ सह सकता हूँ। मुझे मकान और कपड़ों की भी चिंता नहीं। लेकिन बदनामी का एक भी लफ्ज़ मुझे हजम नहीं हो सकता। उन दोनों की शादी हो जाय मैं भी चाहता था, लेकिन शादी से पहले वे जिस स्वतंत्रता से एक-दूसरे के मित्र हो गए, इसकी लोग हँसी उड़ाने लगे।

शंकर : लोगों की हँसी का क्या है ? पति-पत्नी रूप से जिन्हें मान लिया गया है तो फिर बदनामी कैसी ?

भगवान् : नहीं पुजारी जी, मैंने कभी उन्हें इस रूप से नहीं माना।

शंकर : प्रकाश एक सच्चरित्र युवक है।

भगवान् : हो सकता है, लेकिन हमारे विचारों में बड़ा फर्क पड़ गया है। वह जापान की तरह चरखे में बिजली जोड़ देना चाहता है और मैं चीन की तरह उसे आदमी के हाथों से ही चलने की चीज बना रहने देना चाहता हूँ।

शंकर : मेरी समझ में यह भी क्या किसी अपने साथी से दुश्मनी कर लेने की बात है ? चरखा चलाना चाहिए जैसे भी हो। बिजली से बत्ती तो जलेगी। चरखा भी चले तो क्या बिगड़ जायगा ?

भगवान् : तुम नहीं जानते यह मशीन और हाथ की लड़ाई का सवाल है।

शंकर : लेकिन दुनिया में एटम नाम का दैत्य प्रकट हो रहा है, उसका सामना करने के लिए ये दोनों किसी समझौते पर आ जायँ तो क्या बुरा है ?

भगवान् : एक उमर तक मनुष्य अपने विचारों को आसानी से बदल सकता है। बाल पक जाने के बाद उसके दिमाग की नालियाँ गहरी और कड़ी हो जाती हैं। फिर वह डाल टूट जायगी पर दूसरी दिशा में मोड़ी नहीं जा सकती। मेरा एक भी बाल काला नहीं रहा।

शंकर : और मैं क्या जवान हूँ। मैंने किस तरह अपने विचार बदल दिए ? कौन कह सकता है मेरी भलाई मेरे विचारों के बदलाव से नहीं हुई ?

भगवान : समझ तो रहा हूँ तुम्हें देखकर। अंधविश्वासों को तोड़कर नया क्षितिज दिखाई देगा, यह जानता हूँ।

शंकर : तो फिर डर किसका है? युग के साथ बदलते रहने से जवानी बहुत दिन तक साथ देती है। अंधविश्वास मानवी आकांक्षाओं की काल-कोठरी है।

भगवान् : लेकिन मैं वादा कर चुका हूँ।

शंकर : कैसा वादा?

भगवान : मैंने अंजना को दान कर दिया।

शंकर : कैसा दान?

भगवान : वाग्दान! प्रतिध्वनित शब्द क्या लिखित के समान ही शक्तिशाली नहीं है?

शंकर : लेकिन जब वे बेईमानी पर उतर आए हैं, तो तब तुम्हारी भलाई कोई मतलब नहीं रखती?

भगवान : हाँ, पहले उन्होंने कहा था मुझे केवल एक सुशीला कन्या चाहिए। उसकी नम्रता उसकी शिक्षा और उसकी तंदुरुस्ती उसका आभूषण समझी जायगी। अब कहते हैं—तुम्हारे सिर्फ एक लड़की, सब कुछ इसे न दोगे तो फिर किसे दोगे?

शंकर : हाँ नंबरदार जी, तुम्हारी सिर्फ एक लड़की। उसे नाखुश कर तुम किसी को खुश न कर सकोगे।

भगवान : उसकी नाखुशी कैसी?

शंकर : अब वह सयानी है। अपने भले-बुरे की उसे पहचान हो गई है। उसके विवाह के लिए तुम्हें उसकी राय लेना जरूरी है।

शंकर : लोगों की हँसी का क्या है ? पति-पत्नी रूप से जिन्हें मान लिया गया है तो फिर बदनामी कैसी ?

भगवान् : नहीं पुजारी जी, मैंने कभी उन्हें इस रूप से नहीं माना।

शंकर : प्रकाश एक सच्चरित्र युवक है।

भगवान् : हो सकता है, लेकिन हमारे विचारों में बड़ा फर्क पड़ गया है। वह जापान की तरह चरखे में बिजली जोड़ देना चाहता है और मैं चीन की तरह उसे आदमी के हाथों से ही चलने की चीज बना रहने देना चाहता हूँ।

शंकर : मेरी समझ में यह भी क्या किसी अपने साथी से दुश्मनी कर लेने की बात है ? चरखा चलाना चाहिए जैसे भी हो। बिजली से बत्ती तो जलेगी। चरखा भी चले तो क्या बिगड़ जायगा ?

भगवान् : तुम नहीं जानते यह मशीन और हाथ की लड़ाई का सवाल है।

शंकर : लेकिन दुनिया में एटम नाम का दैत्य प्रकट हो रहा है, उसका सामना करने के लिए ये दोनों किसी समझौते पर आ जायँ तो क्या बुरा है ?

भगवान् : एक उमर तक मनुष्य अपने विचारों को आसानी से बदल सकता है। बाल पक जाने के बाद उसके दिमाग की नालियाँ गहरी और कड़ी हो जाती हैं। फिर वह डाल टूट जायगी पर दूसरी दिशा में मोड़ी नहीं जा सकती। मेरा एक भी बाल काला नहीं रहा।

शंकर : और मैं क्या जवान हूँ। मैंने किस तरह अपने विचार बदल दिए ? कौन कह सकता है मेरी भलाई मेरे विचारों के बदलाव से नहीं हुई ?

भगवान : समझ तो रहा हूँ तुम्हें देखकर। अंधविश्वासों को तोड़कर नया क्षितिज दिखाई देगा, यह जानता हूँ।

शंकर : तो फिर डर किसका है? युग के साथ बदलते रहने से जवानी बहुत दिन तक साथ देती है। अंधविश्वास मानवी आकांक्षाओं की काल-कोठरी है।

भगवान् : लेकिन मैं वादा कर चुका हूँ।

शंकर : कैसा वादा ?

भगवान : मैंने अंजना को दान कर दिया।

शंकर : कैसा दान ?

भगवान : वाग्दान ! प्रतिध्वनित शब्द क्या लिखित के समान ही शक्तिशाली नहीं है ?

शंकर : लेकिन जब वे बेईमानी पर उतर आए हैं, तो तब तुम्हारी भलाई कोई मतलब नहीं रखती ?

भगवान : हाँ, पहले उन्होंने कहा था मुझे केवल एक सुशीला कन्या चाहिए। उसकी नम्रता उसकी शिक्षा और उसकी तंदुरुस्ती उसका आभूषण समझी जायगी। अब कहते हैं—तुम्हारे सिर्फ एक लड़की, सब कुछ इसे न दोगे तो फिर किसे दोगे ?

शंकर : हाँ नंबरदार जी, तुम्हारी सिर्फ एक लड़की। उसे नाखुश कर तुम किसी को खुश न कर सकोगे।

भगवान : उसकी नाखुशी कैसी ?

शंकर : अब वह सयानी है। अपने भले-बुरे की उसे पहचान हो गई है। उसके विवाह के लिए तुम्हें उसकी राय लेना जरूरी है।

भगवान : मैंने उसकी राय ली है । पहले वह कुछ अनमनी-सी थी । अब उसने मेरी पसंद को मान लिया है ।

शंकर : उन दोनों ने मिलकर इस गाँव को हरा-भरा और साफ-सुथरा बनाने की प्रतिज्ञा की थी । तुम जानते हो इस बात को ?

भगवान : हाँ—लेकिन—

शंकर : और इस गाँव की उन्नति करने वालों को तुमने तोड़कर इधर-उधर बिखरा दिया ।

भगवान : लेकिन दोनों ने ये दो बरगद के पेड़ अलग-अलग लगाए हैं ।

शंकर : वे दोनों फिर एक ही थाले में लगा दिए जा सकते हैं ।

भगवान : वे लगाए जा सकते हैं ?

शंकर : हाँ-हाँ !

भगवान : फिर उनको क्या लिखूं ?

शंकर : चलो, लिख दो, मैं बताऊँगा । लिख दो, मेरी लड़की तुम्हारे यहाँ विवाह करने के लिए राजी नहीं है ।

[दोनों भगवान् के घर जाते हैं।]

प्रकाश : [बाहर से आकर पुकारता है।] जुगत ! भगत ! कहाँ सो रहे हो रे ! तुम्हारे खेतों में जानवर घुस गए हैं ।

[दोनों—जुगत और भगत हाथों में लठ लेकर निकलते हैं ।]

भगत : [जमीन पर लठ पटक कर] केकर बाय ?

जुगत : [लठ पटक कर] किस तरफ ?

प्रकाश : तुम तो ऐसे आ रहे हो, मानो चोर और डाकुओं का सामना करना है । क्रोध को छोड़ो । उन वाणी-विहीन पशुओं पर दया करनी होगी । वे चाहे किसी के भी क्यों न हों ?

जुगत : वे हमारे खेतों में क्यों घुस आए ? चल भगत ! [उसका हाथ खींच तेजी से जाने लगता है ।]

प्रकाश : [उन्हें रोककर] ठहरो, इसमें आधा कसूर तुम्हारा क्यों नहीं है ?

भगत : हमार कसूर कैसन बारे ?

प्रकाश : तुमने कच्ची बाड़ क्यों की ? गुस्सा छोड़ो । वह मनुष्य को कमजोरी का दिखावा है । गुस्से से हमारे शरीर के भीतर बड़े जहरीले रस निकलते हैं, वे हमारी तंदुरुस्ती के लिए बड़े हानिकर होते हैं । हमें गाँव और घर की ही सफाई नहीं, मन को भी उज्वल करना है ।

भगत : [सिर खुजाकर] तब का करा जाई । बतावा न ।

प्रकाश : लाठियाँ यहीं फेंक जाओ । [भगत लाठी फेंक देता है । प्रकाश जुगत के हाथ की छीन लेता है ।] उन अज्ञानी पशुओं का भी क्या कोई अपराध है ? लाठी लेकर जाओगे तो उन जानवरों के मालिकों के मन में तुम्हारे लिए वैर की गाँठे पड़ जावेंगी ।

[दोनों तेजी से जाते हैं ।]

अंजना : [अपने भीतर से आती है । उल्लसित होकर प्रकाश के दोनों हाथ पकड़ लेती है ।] प्रकाश !

प्रकाश : [खिन्न होकर उससे हाथ छुड़ा लेता है ।] फिर वही बात !

अंजना : [फिर उसके कंधे पर हाथ रख लेती है ।] नहीं प्रकाश, मैं पिता जी के सामने ही तुम्हारे पास आई हूँ । वे अब सहमत हो गए हैं । उन्हें जब अपनी भूल मालूम हो गई तो क्या उचित नहीं है तुम अपना विचार बदल लो । अवश्य ही प्रकाश हमें कोई विलग नहीं कर सकता । हम उजाले और छाया की तरह एक ही हैं — कोई हमें बिछुड़ा नहीं सकता !

प्रकाश : मैं कहता हूँ पागल हो गई हो क्या। छोड़ दो मेरा स्पर्श। उससे मेरे ··

अंजना : प्रकाश, हमने इस गाँव को साफ-सुथरा बनाया है। इसकी बीमारी, दरिद्रता को घटाकर इसकी उपज, पानी और सड़कें बढ़ाई हैं। अब इसके युवक इसका तिरस्कर कर शहरों की तरफ नहीं खिचते। इसमें अब शहर और गाँव दोनों की अच्छी-अच्छी चीज़ें शामिल हो गई हैं। इस हालत में मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है, मैं यहाँ से नोचकर कहीं फेंक दी जाऊँ ?

प्रकाश : अपने पिताजी से पूछो। गाँव-सभा के प्रधान वही हैं।

अंजना : यह लोक-युग है। इसमें एक मनुष्य की सत्ता की कोई कीमत नहीं है। हमें बहुमत चाहिए।

प्रकाश : सभा सामूहिक प्रश्नों के फैसले के लिए होती है। व्यक्तिगत प्रश्नों को वहाँ रखना गलत है। अपने पिताजी की मदद लो।

अंजना : पिताजी ने अपना मत बदल दिया है।

प्रकाश : कैसा मत बदल दिया ?

अंजना : पुजारी जी की तरह उन्होंने भी छूत माननी छोड दी।

प्रकाश : उनके भीतर जाति का यह अज्ञान था ही कहाँ ? वे छूत मानते ही कब थे ?

अंजना : मशीन से घृणा करना, क्या उसकी छूत मानना नहीं है ? लेकिन अब वे कहते हैं, अणु की भयंकर शक्ति के सामने मशीन की कोई बिसात नहीं है।

प्रकाश : हाँ, इस दुनियाँ के बाहर के ग्रहों में बस्ती बसाने के स्वप्न देखने तो लगे हैं कुछ लोग।

अंजना : तब फिर बेकारी का कोई सवाल नहीं रह जाता और आबादी का भी तो कुछ नहीं।

प्रकाश : [कुछ नाक-भौं चढ़ाकर] क्या मतलब है तुम्हारा ?

अंजना : प्रकाश, हमने इसी जगह पर कभी एक प्रतिज्ञा की थी।

प्रकाश : पैर पर बालू ठोककर या छोटे-छोटे पत्थर जमाकर जो घरौंदे बनाए जाते हैं, उस अज्ञान को क्या हम अपने रहने के घर कह सकते हैं ?

अंजना : कैसे अज्ञान की बात कह रहे हो तुम ? जो प्रतिज्ञा की थी तुमने इस गाँव को शहर बना देने की उसका...

प्रकाश : बना तो रहे हैं। क्या तुम्हें अब भी कोई संदेह है ? अब यह अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित हो गया। देख रही हो तुम कोई भी गाँव का बालक जो कामनाओं का बोझा लादकर रोटी के लिए शहर को जाता हो। उसे रोटी का भेद मिल गया। रोटी केवल किसान की कल्पना और उसी की उपज है।

अंजना : उस प्रतिज्ञा की जड़ में और भी तो कोई प्रतिज्ञा थी प्रकाश ! उसे क्यों भूलते हो ? पिताजी अब राजी हो गए हैं।

प्रकाश : किसलिए राजी हो गए हैं ?

अंजना : हमारे लिए।

प्रकाश : हमारे लिए ?

[भरोसे के साथ चिंतित गणेश आता है।]

भरोसे : पुजारी जी कहाँ हैं ? वे नाराज होकर कहीं चले तो नहीं गए ?

अंजना : हटो, यहाँ से जाओ। हम बहुत जरूरी बातें कर रहे हैं। तुम क्यों आए यहाँ ?

गणेश : वे अभी तक घर में नहीं आए। उनका गुस्सा फिर कहीं भड़क तो नही उठा है। अंजना, वे कहाँ चले गए ?

[भगवान् और शंकर का आना ।]

भगवान् : [पछतावे के स्वर में] प्रकाश, मुझसे कुछ भूल हो गई । मैंने अपना अभिमान अपने ही हाथों से चूर-चूर कर दिया । मैं भी वढ़ती हुई दुनिया के साथ आगे चलूंगा ।

[जुगत और भगत आते हैं ।]

प्रकाश : नहीं पिताजी, आपने कोई भूल नहीं की है और यह मेरी भी भूल नहीं है, जव मैं यह कहता हूँ कि दुनिया में हर रोज एक लाख आदमी वढ़ते जा रहे हैं ।

अंजना : लेकिन क्या उन सवको खिलाने का भार तुम्हारे ही सिर पर है प्रकाश ! जगत के कल्याण के लिए छिपी-प्रकट कई शक्तियां काम करती हैं । अभी तुमने कहा था, मनुष्य दूसरे ग्रहों तक पहुंच जायगा ।

प्रकाश : अभी कहाँ पहुँचा है ? तव तक विश्व की शांति के लिए हमें वड़े संयम से काम लेना है ।

भगवान् : हाँ संयम को मैं भी मानता हूँ । भगत, ले तो इस चिट्ठी को डाकखाने में छोड़ आ ।

शंकर : जरा ठहर जाओ । प्रकाश अभी वहुत-कुछ कहना चाहता है । वड़ी घनी भावनाएँ उसके माथे में शव्दों का रास्ता टटोल रही हैं । उसकी वात अभी पूरी नहीं हुई ।

भगवान् : मैं अपनी वाणी से उसकी वात पूरी कर दूंगा । प्रकाश, मैंने तुम्हारी वात मान ली । मेरी मशीन के साथ कोई दुश्मनी नहीं रही । पर चरखे को विजली से जोड़कर मनुष्य को सो जाना न होगा ।

प्रकाश : नहीं, वह सहायक पाकर और भी अपने कर्म में सचेष्ट होगा ।

भगवान् : वस कोई झगड़ा नहीं रहा । ले रे, यह चिट्ठी डाल दे

डाकखाने में। अंजना तुम्हारी है । [भगत को चिट्ठी देता है ।]

प्रकाश : असंभव !

अंजना : [जोर से चिल्लाकर] प्रकाश !

प्रकाश : मेरा अटल निश्चय है, विवाह कर बेकारी की संख्या नहीं बढ़ाऊँगा ।

भगत : लेकिन अस्पताल माँ ऐसन इंतजाम वा कि शादी तो हुई जाई, पर आबादी ना बढ़इ पाई ।
[शंकर भगत के हाथ से चिट्ठी ले लेता है और निराश होकर जाती हुई अंजना को रोक लेता है ।]

शंकर : धीरज रखो बेटी, प्रकाश समझदार युवक है ।

(यवनिका)

चौथा अंक

[वही दृश्य। वंदनवार और विजली के वल्वों की मालाएँ लटक रही हैं। चवूतरे पर दरी विछी है, फूलों के गमले सजे हैं। मंदिर के द्वार पर फाटक वना है, उस पर "स्वागतम्" लिखा है। मंदिर के अहाते में उजाला और अधिक चहल-पहल है। शंख-घंट, शहनाई वज रहे हैं। जुगत और भगत चवूतरे पर वैठे हुए तंवाकू पी रहे हैं।]

जुगत : खुशी की वात है आज सिर के साथ हाथ की शादी हो रही है।

भगत : का वकता है तू ?

जुगत : सिर माने शहर जो हाथ से काम नहीं करता, यानी अपने जूठे वरतन नहीं मलता, अपने कपड़े नहीं धोता, अपने कमरे में झाड़ू नहीं देता और हाथ माने गाँव जो दिमाग को खर्च नहीं करता यानी अपढ़ मूर्ख—जैसे तू ! खेती में नए साइंस को काम में नहीं लाता। मिल-जुल कर काम नहीं करता। मैला करता है, खाद को खा जाता है। अव उन दोनों की शादी हो गई। शहर ने हाथ की मजूरी से फायदा उठाया और गाँव ने पढ़ाई-लिखाई का।

भगत : हाँ कभी-कभी वात तो ठीक कहत है तू।

जुगत : दूसरी शादी हुई है—तेरी और मेरी ।

भगत : धुत्त ! पागल ! उल्लू !

जुगत : सुन, मैं मशीन हूँ, तू मजूर । मैं ट्रेक्टर चलाना सीख रहा हूँ । कूस-काँस, झाड़-झखाड़, रोड़े-पत्थरों से बंजर पड़ी सारी जमीन को खेती के लायक बना दूँगा ।

भगत : हमरे हल का खाइ जइबे तो हमहू का खइबो ?

जुगत : घबराता क्यों है ? रेल चलती है तो क्या इक्के-ताँगों को भी खा गई ? अपनी हद पर बैलगाड़ी भी चलती है और पग-डंडी पर हमारा पैदल चलना भी क्या किसी ने छीन लिया ? वह देख, शंकर पुजारी और भरोसे को देख, वह अंधविश्वास और ईमानदारी की शादी है ।

भगत : मुला अंजना केर शादी माँ अबहिने देर बाय का ?

जुगत : नहीं, इस खुशी में आज हमारे नंबरदार जी और ग्राम-सभा के परधान भगवान जी गाँव की बिजली का पहला बटन दबाने वाले हैं, अभी देख तो सही ।

[सब बिजली के बल्ब जल उठते हैं ।]

भगत : [खुश हो उछलता है ।] आ गई ! आ गई ! बिजली !

प्रकाश : [भीतर से आता है ।] खुशी मनाओ, सिर्फ उजाला ही नहीं, यह बिजली हमारे सभी छोटे-बड़े काम कर देगी, लेकिन अगर हमने सुस्ती दिखाई और जरा भी चूके तो यह हमें मिनटों में भसम भी कर देगी ।

भगत : [प्रकाश का हाथ पकड़कर] तोहार साथ नाहीं कबूल अंजना केर शादी ?

प्रकाश : कौन कहता है अंजना की शादी मेरे साथ नहीं हुई ?

भगत : अंजना तो वा खड़ी बाय केओ अउरे केर साथ ?

प्रकाश : वह नकली अंजना है, हाड़-चाम की अंजना ! मेरी तो सच्ची अंजना योजना है, पंचवर्षीय योजना ! जब तक देश का

एक-एक व्यक्ति खुशहाल नहीं हो जाता, यह योजना चलती रहेगी। मेरी उसी योजना से शादी हुई है। समझे ?

[मंदिर में शहनाई बजती है।]

जुगत : और उस अंजना की भी शादी हो गई !

प्रकाश : हाँ, आज खुशी का दिन है, उसे नमस्कार है और नमस्कार हैं बिजली की इस शक्ति को। इससे गाँव का अंधेरा तो जाएगा ही, सिचाई, कुटाई, पिसाई का भी प्रश्न हल होगा। किसी हद तक ईंधन का काम भी चलेगा और सबसे बड़ी बात ! इससे हमारे गांव के लघु उद्योग पनप उठेंगे। ऊन-सूत, लकड़ी लोहा, मूँज-बेत, मिट्टी-पत्थर के कई काम खुल पड़ेंगे। किसानों के अवकाश का कोई भी क्षण व्यर्थ की बातों में नहीं बीतेगा।

जुगत : और तुम कहते थे गाँव सारी दुनिया के साथ जुड़ जावेगा।

प्रकाश : हाँ रेडियो के संबंध से हम अपने देश और संसार के साथ एक होकर रहेंगे। हर तरह के ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा ही नहीं, अनेक प्रकार के मनोरंजन भी हमें मिलते रहेंगे।

भगत : ई आवत हई।

[दुलहिन सजी हुई अंजना माया के साथ आती है उसके अंचल से बँधा हुआ एक पट लंबा होता हुआ नेपथ्य में चला गया है।]

प्रकाश : कौन सुन्दर और शोभनीय ?

अंजना : मैं हूँ हाड़-चाम की अंजना, तुम्हें प्रणाम करती हूँ प्रकाश ! [प्रकाश के चरणों को छूकर] आशीर्वाद दो।

प्रकाश : सुखी रहो अंजना। तुम्हारी ही कृपा से मुझे भी एक योजना मिली है। तुम भी मुझे आशीर्वाद दो।

जुगत और भगत—अंजना की जय !

शंकर और भरोसे—[आकर] तथास्तु !

(यवनिका)

—:०:—

३९९६।
21.6.78

Library IIAS, Shimla
H 812.8 P 195 A
00039851